# BHDC-105
## छायावादोत्तर हिंदी कविता

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# BHDC-105
## छायावादोत्तर हिंदी कविता

# खंड

# 3

इकाई 13

काव्य वाचन एवं विश्लेषण : केदारनाथ अग्रवाल

इकाई 14

काव्य वाचन एवं विश्लेषण : नागार्जुन

इकाई 15

काव्य वाचन एवं विश्लेषण : रामधारी सिंह दिनकर

इकाई 16

काव्य वाचन एवं विश्लेषण : माखनलाल चतुर्वेदी

इकाई 17

काव्य वाचन एवं विश्लेषण : सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' और भवानी प्रसाद मिश्र

इकाई 18

काव्य वाचन एवं विश्लेषण : रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

इकाई 19

काव्य वाचन एवं विश्लेषण : केदारनाथ सिंह

# इकाई 13 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : केदारनाथ अग्रवाल

**इकाई की रूपरेखा**


13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

13.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

13.4 उपयोगी पुस्तकें


## 13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- केदारनाथ अग्रवाल की चार कविताओं की विस्तृत व्याख्या समझ सकेंगी/सकेंगे;
- केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं की व्याख्या की दिशाओं को जान सकेंगी/सकेंगे;
- इन कविताओं के माध्यम से प्रगतिवाद की विशिष्टताओं को समझ सकेंगी/सकेंगे;
- केदारनाथ अग्रवाल की काव्य–भाषा को समझने का प्रयास कर सकेंगे/सकेंगी;
- केदारनाथ अग्रवाल की शब्द–योजना और शब्दावली को जान सकेंगी/सकेंगे।

## 13.1 प्रस्तावना

केदारनाथ अग्रवाल का जन्म 1911 में बाँदा जिले के कमासिन नामक गाँव में हुआ था इनकी पढ़ाई–लिखाई इलाहाबाद और कानपुर में हुई थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. करने के बाद इन्होंने एल.एल.बी. की पढ़ाई डी.ए.वी. कॉलेज, कानपुर से की। वकालत को उन्होंने अपना पेशा और जीविका का साधन बनाया। उनकी मृत्यु 22 जून, 2000 को हुई।

केदारनाथ अग्रवाल की पहचान प्रगतिवादी कवि के रूप में रही है। ग्रामीण जीवन को व्यक्त करने में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। खेती–बारी, गाँव की प्रकृति, बाँदा के आस–पास का जन–जीवन, केन नदी को आधार बनाकर उन्होंने कई कविताएँ लिखी हैं।

**काव्य–संग्रह**

युग की गंगा (1947), नींद के बादल (1947), लोक और आलोक (1957), फूल नहीं रंग बोलते हैं (1965), आग का आईना (1970), गुलमेंहदी (1978), पंख और पतवार (1980), हे मेरी तुम (1981), मार प्यार की थापें (1981), बम्बई का रक्त–स्नान (1981), अपूर्वा (1984), बोल बोल अबोल (1985), आत्म–गंध (1988), अनहारी हरियाली (1990), खुलीं आँखें खुले डैने (1993), पुष्प दीप (1994) अनुवाद –देश–देश की कविताएँ (1970)

**काव्य–संकलन**

आधुनिक कवि – 16 (1978), कहें केदार खरी–खरी (1983, सं.– अशोक त्रिपाठी), जमुन जल तुम (1984, सं.– अशोक त्रिपाठी), जो शिलाएँ तोड़ते हैं (1986, सं.– अशोक त्रिपाठी), वसन्त में प्रसन्न

हुई पृथ्वी (1996, सं.– अशोक त्रिपाठी), कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह (1997, सं.– अशोक त्रिपाठी),

**निबन्ध–संग्रह**

समय–समय पर (1970), विचार–बोध (1980), विवेक–विवेचन (1981)

उपन्यास – पतिया (1985)

यात्रा–वृत्तान्त – बस्ती खिले गुलाबों की (1975)

पत्र–साहित्य – मित्र–संवाद (1991, सं– रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी)

## 13.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

### एक

**माँझी न बजाओ बंशी**

माँझी ! न बजाओ बंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता है जैसे जल डोलता
जल का जहाज जैसे पल–पल डोलता
माँझी! न बजाओ बंशी मेरा प्रन टूटता
मेरा प्रन टूटता है जैसे तृन टूटता
तृन का निवास जैसे बन–बन टूटता
माँझी! न बजाओ बंशी मेरा तन झूमता
मेरा तन झूमता है तेरा तन झूमता
मेरा तन तेरा तन एक बन झूमता

**(1946, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं')**

**सन्दर्भ और प्रसंग**

'माँझी न बजाओ बंशी...' शीर्षक कविता 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (1965) काव्य–संग्रह में संगृहीत है। यह उनकी प्रसिद्ध कविताओं में से एक है। कवि का विचार है कि कला माध्यमों में इतनी क्षमता होती है कि वह दूसरों को आत्मसात कर लेती है। माँझी की वंशी की आवाज के साथ कवि का आत्मसातीकरण इस कविता की विशेषता है।

**कठिन शब्द**

**माँझी**– नाव चलानेवाली एक जाति, **बंशी**–बाँसुरी, **प्रन**– प्रतिज्ञा, कसम, **तृन**– घास–फूस, **तृन का निवास**–घास–फूस से बना घर

**व्याख्या**

इस कविता में केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं कि माँझी, तुम जब वंशी बजाते हो तो मेरा मन डोलने लगता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम वंशी न बजाओ!

तुम जब वंशी बजाते हो तो उसका प्रभाव सबसे पहले मेरे मन पर पड़ता है। तुम्हारी धुन पर मेरा मन धीरे–धीरे डोलने लगता है। मेरा मन वैसे ही डोलता है जैसे गहरे पानी में हलचल होती है। हिलता हुआ पानी इतने बड़े जहाज को भी डोलने को विवश कर देता है। इस दोलन में जहाज पल–पल झूमता ही जाता है।

माँझी, मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी वंशी की आवाज से अप्रभावित रहूँ। तुम लोक के कलाकार हो और गवईं शैली की कला तुम्हारी पहचान है। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी कला से एकाकार हो जाऊँ! मगर क्या करूँ, तुम जब वंशी बजाते हो तो मेरी प्रतिज्ञा टूटने लगती है! मेरी प्रतिज्ञा उतनी ही आसानी से टूटती है जैसे घास टूट जाती है या घास–फूस से बनी हुई झोपड़ी टूट जाती है। बार–बार झोपड़ी बनाने की तरह मैं भी बार–बार कसम खाता हूँ, मगर मेरी कसम झोपड़ी की तरह बार–बार टूट जाती है।

माँझी, तुम वंशी मत बजाओ! मेरा मन तो डोल ही रहा था, अब तन भी डोल रहा है। मन का डोलना शायद कोई देख न पाए मगर तन का डोलना तो सबके द्वारा देख लिया जाता है। मैं चाहता नहीं कि तुम्हारी वंशी की धुन के साथ मेरी एकात्मकता को लोग चिह्नित करें! लेकिन क्या किया जाए! अब तो मेरा शरीर वैसे ही झूम रहा है, जैसे तुम्हारा तन झूम रहा है। थोड़ी ही देर में मेरा और तेरा तन मानो एकाकार होकर झूमने लगा है।

**काव्य सौष्ठव**

- यह कविता लोक कला की शक्ति को प्रकट करती है।
- सभ्य समाज लोक कला से दूरी रखना चाहता है, मगर उसकी शक्ति से अप्रभावित नहीं रह सकता।
- आज भी लोक धुन पर आधारित गीतों को व्यापक लोकप्रियता मिलती है। कई बार तो शहरी समाज जानता भी नहीं है कि वह जिस धुन को पसंद कर रहा है उसके मूल में कोई लोक धुन है।
- 25, 24 और 21 मात्राओं की तीन–तीन पंक्तियों के क्रम से इस कविता का निर्माण हुआ है। पूरी कविता में तीन–तीन पंक्तियों के कुल तीन चरण हैं।

**विशेष**

केदारनाथ अग्रवाल ने लोक जीवन के संगीत की शक्ति को मनोहर रूप में व्यक्त किया है। उनका ख्याल है कि प्रकृति के करीब रहने वाला जन–जीवन अपने स्वभाव से इतना आत्मीय होता है कि वह दूसरों के मन तक पहुँचने की अपार क्षमता रखता है।

## दो

घन–जन

घन गरजे जन गरजे

बन्दी सागर को लख कातर

एक रोष से

घन गरजे जन गरजे

क्षत–विक्षत लख हिमगिरि अन्तर

एक रोष से

घन गरजे जन गरजे

क्षिति की छाती को लख जर्जर

एक शोध से

घन गरजे जन गरजे

देख नाश का ताण्डव बर्बर

एक बोध से

घन गरजे जन गरजे

**(1946, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं')**

### सन्दर्भ और प्रसंग

'घन गरजे जन गरजे' शीर्षक कविता 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (1965) काव्य–संग्रह में संगृहीत है। केदारनाथ अग्रवाल का विचार है कि बादलों की गर्जना में मुझे जनता की हुंकार सुनाई पड़ती है। बादल मानो विशाल जनता के प्रतीक हैं। पराधीनता के किसी भी रूप को जनता स्वीकार करना नहीं चाहती है। वह अपना रोष प्रकट करती है।

### व्याख्या

केदारनाथ अग्रवाल ने इस कविता में बादलों को जनता का प्रतीक बनाया है। 'सागर', 'हिमगिर' और 'क्षिति' – इन तीन प्रतीकों के माध्यम से कवि ने जनता की दुर्दशा को चित्रित किया है। वे कहते हैं कि बादलों की गर्जना में मुझे जनता की क्रांतिकारी ललकार सुनाई पड़ती है। बादल देखते हैं कि विराट समुद्र अपनी सीमाओं में कैद है, वह बेबस है। इस विराट की पराधीनता बादलों में रोष उत्पन्न कर देती है और वे मानो समुद्र की मुक्ति के लिए गरज उठते हैं।

संसार की सबसे बड़ी और ऊँची पर्वत शृंखला हिमालय का हृदय मानो आज बुरी तरह घायल है। यह देखकर बादलों में रोष भर जाता है और वे गरज उठते हैं। इसी तरह विराट धरती की छाती आज जर्जर अवस्था को प्राप्त कर गयी है। धरती की इस हालत को सर्वत्र देखकर बादल गरज उठे हैं। चारों तरफ विनाश का अकरुण नृत्य चल रहा है। इन बातों को समझते हुए बादल गरज उठे हैं।

**कठिन शब्द**

**घन**– बादल, **जन** – सामान्य जनता, **बन्दी सागर**–मानो समुद्र भी बँधा हुआ हो, **लख**– देख कर, **कातर**– बेबस, परेशान **रोष**– गुस्सा, **क्षत–विक्षत**– घायल, बुरी तरह चोटिल, **हिमगिरि अन्तर** – हिमालय का मन, **क्षिति की छाती**– धरती, **जर्जर**– कमजोर और टूटा–फूटा, **शोध**– खोज से प्राप्त निष्कर्ष, **ताण्डव** – नृत्य का विध्वंसक रूप, **बर्बर**– निर्दय, **बोध**– समझ

केदारनाथ अग्रवाल ने प्रकृति के उपादानों के माध्यम से जनता की दुर्दशा का चित्रण किया है। उनका ख्याल है कि इन बातों को जनता खूब समझती है। वह रोष में है, उसे इन बर्बरताओं का बोध है और वह अपना विरोध मुखरित होकर प्रकट करती रहती है।

यह कविता प्रकृति चित्रण के माध्यम से जन–सरोकारों को व्यक्त कर रही है।

**काव्य सौष्ठव**

- 'घन' और 'जन' का तालमेल सुंदर बन पड़ा है।
- जनता की दुर्दशा प्रकृति की तरह व्यापक रूप से फैली है। उसका निदान जरूरी है, अन्यथा विद्रोह अवश्यम्भावी है।
- 16, 08 और 12 मात्राओं की तीन पंक्तियों से इस कविता का निर्माण हुआ है। तीन–तीन पंक्तियों के चार चरणों से यह कविता पूरी हुई है।

**विशेष**

जनता विराट है। उसे बाँधने की कोशिश असफल हो जाती है। जनता का क्रोध सब कुछ बदल सकता है।

## तीन

चंद्रगहना से लौटती बेर

देख आया चंद्रगहना।

देखता हूँ दृश्य अब मैं

मेंड़ पर इस खेत की बैठा अकेला।

एक बीते के बराबर

यह हरा ठिंगना चना,

बाँधे मुरैठा शीश पर

छोटे गुलाबी फूल का,

सज कर खड़ा है।

पास ही मिलकर उगी है

बीच में अलसी हठीली

देह की पतली, कमर की है लचीली,

नील फूले फूल को सिर पर चढ़ा कर

कह रही है, 'जो छुए यह

दूँ हृदय का दान उसको।'

और सरसों की न पूछो –
हो गयी सबसे सयानी,
हाथ पीले कर लिए हैं,
ब्याह–मंडप में पधारीय
फाग गाता मास फागुन
आ गया है आज जैसे।

देखता हूँ मैं : स्वयंवर हो रहा है,
प्रकृति का अनुराग–अंचल हिल रहा है
इस विजन में
दूर व्यापारिक नगर से
प्रेम की प्रिय भूमि उपजाऊ अधिक है।

और पैरों के तले है एक पोखर,
उठ रहीं इसमें लहरियाँ,
नील तल में जो उगी है घास भूरी
ले रही वह भी लहरियाँ।

एक चाँदी का बड़ा–सा गोल खंभा
आँख को है चकमकाता।

हैं कई पत्थर किनारे
पी रहे चुपचाप पानी,
प्यास जाने कब बुझेगी!

चुप खड़ा बगुला डुबाये टाँग जल में,
देखते ही मीन चंचल

ध्यान निद्रा त्यागता है,
चट दबा कर चोंच में
नीचे गले के डालता है!

एक काले माथ वाली चतुर चिड़िया
श्वेत पंखों के झपाटे मार फौरन
टूट पड़ती है भरे जल के हृदय पर,
एक उजली चटुल मछली
चोंच पीली में दबा कर
दूर उड़ती है गगन में!

औ' यहीं से –
भूमि ऊँची है जहाँ से –
रेल की पटरी गयी है।
ट्रेन का टाइम नहीं है।

मैं यहाँ स्वच्छन्द हूँ,
जाना नहीं है।

चित्रकूट की अनगढ़ चौड़ी
कम ऊँची–ऊँची पहाड़ियाँ
दूर दिशाओं तक फैली हैं।

बाँझ भूमि पर
इधर–उधर रींवा के पेड़
काँटेदार कुरूप खड़े हैं।

सुन पड़ता है
मीठा–मीठा रस टपकाता

सुग्गे का स्वर
टें टें टेंय
सुन पड़ता है
वनस्थली का हृदय चीरता,
उठता–गिरता
सारस का स्वर
टिरटों  टिरटोंय
मन होता है –
उड़ जाऊँ मैं
पर फैलाये सारस के संग
जहाँ जुगुल जोड़ी रहती है
हरे खेत में
सच्ची प्रेम कहानी सुन लूँ
चुप्पे चुप्पे।

**(1946, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं')**

**सन्दर्भ और प्रसंग**

'चंद्रगहना से लौटती बेर' शीर्षक कविता 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (1965) काव्य–संग्रह में संगृहीत है। यह केदारनाथ अग्रवाल की एक प्रसिद्ध कविता है। चित्रकूट क्षेत्र में चंद्रगहना एक गाँव है। इस गाँव के आस–पास की प्रकृति के बारे में इस कविता में बताया गया है। यह चित्रण ग्रामीण के साथ–साथ किसानी भी है। मैदान की किसानी–प्रकृति पर कविता लिखने में केदारनाथ अग्रवाल को पर्याप्त सफलता मिली है।

**व्याख्या**

केदारनाथ अग्रवाल ने प्रस्तुत कविता में, चंद्रगहना नामक गाँव से लौटते हुए, प्रकृति के बारे में कुछ बातें कही हैं। इस यात्रा में प्रकृति के कुछ रूप कवि को दिखाई पड़े, जिनका जिक्र इस कविता में हुआ है। कवि का पर्यवेक्षण और आत्मीय प्रस्तुति इस कविता की विशेषता है।

---

**कठिन शब्द**

**चंद्रगहना**– एक गाँव का नाम, **लौटती बेर**– लौटते समय, **मेड़** – खेत का ऊँचा किनारा, **एक बीते**– एक बित्ता, एक बालिश्त, **ठिंगना**– बौना, जिसकी ऊँचाई कम हो, **मुरैठा**– मुरेठा, पगड़ी, **अलसी**– तीसी, तेलहन की एक फसल, **हठीली**–जिद्दी, **सयानी**– ब्याह के लायक हो गयी है, **हाथ पीले**– शादी की तैयारी में हल्दी–उबटन से आई गुराई, शादी करना, **फाग** – होली के गीत, **फागुन**–फाल्गुन का महीना, वसंत ऋतु का महीना **स्वयंवर**– विवाह की एक पद्धति जिसमें दुल्हन अपनी इच्छा से दूल्हे को चुनती है, **अनुराग–अंचल** – प्रेम से परिपूर्ण आँचल, **विजन** – एकांत जगह, **पोखर**– पोखरा, तालाब, **नील तल** – तालाब की गहराई में तल नीले रंग का नजर आ रहा है, **घास भूरी**– पानी के भीतर जमने वाला पौधा, **माथ**– माथा, सिर, **चटुल** – चंचल, **स्वच्छन्द**– जिस पर कोई बंधन न हो, **बाँझ भूमि**– बंजर जमीन, **रींवा के पेड़** – एक काँटेदार पेड़, **वनस्थली**– जंगली और वीरान जगह

---

कवि चंद्रगहना को देख आया है। वह खेत की मेड़ पर बैठा है और आस–पास के दृश्यों को देख रहा है। कवि ने देखा कि खेत में चने की फसल लगी है। उसका हरा पौधा लगभग एक बित्ते के बराबर ऊँचा हो गया है, मगर व्यक्तित्व से ठिगना मालूम पड़ता है। उसमें निकला हुआ गुलाबी फूल सिर पर बँधी पगड़ी की तरह मालूम पड़ता है। सजा–धजा चना मानो किसी उत्सव की तैयारी कर रहा है, हो सकता है कि वह अपनी शादी की तैयारी कर रहा हो!

वहीं पास में ही सट कर तीसी के पौंधे उगे हुए हैं। मगर वह तो चने से लंबी है, देह से दुबली भी है, उसकी कमर में बहुत लचक भी है। उसने अपने नीले फूल को माथे पर चढ़ा–सजा रखा है और शर्त रख दी है कि जो इस फूल को छू देगा उसे मैं अपने हृदय का दान दे दूँगी। मतलब उससे शादी कर लूँगी। लगता है कि उसने चने को ध्यान में रखकर यह कठिन शर्त रख दी है! बेचारा एक बित्ते का ठिगना चना उस लंबी छरहरी अलसी के सिर पर सजे नीले फूल को कैसे छू पाएगा! अलसी ने चने को छेड़ने के लिए खूब शरारत रची है!

खेतों में फैली सरसों की फसल क्या खूब लग रही है! ऐसा लगता है मानो सरसों अब ब्याह के लायक सयानी हो गयी है। उसके पीले फूल यूँ लग रहे हैं जैसे, शादी की तैयारी के लिए हल्दी–उबटन से हाथ पीले हो गए हैं। वह ब्याह के लिए मानो मण्डप में आ चुकी है। यूँ लगता है कि फाल्गुन का महीना अपनी फगुनाहट की हवा के जरिए ब्याह और होली के गीत गा रहा है!

कवि को लग रहा है कि प्रकृति में स्वयंवर का कार्यक्रम चल रहा है। इस खुशी में प्रकृति का आँचल मारे स्नेह के डोल रहा है। वैसे तो यह जगह निर्जन है, मगर धंधे–व्यापार वाले शहर से दूर रहने के कारण यहाँ प्रेम का उपजाऊ वातावरण मौजूद है। अर्थात् सरल जीवन से उत्पन्न प्रेम की सम्भावनाएँ यहाँ उपलब्ध हैं।

इसके बाद कवि ने एक बड़े तालाब की चर्चा की है। कवि जहाँ बैठा है, वहाँ से उसके पैरों की तरफ एक बड़ा पोखर है। हवा के कारण उस पोखर में लहरें दिखाई पड़ रही हैं। पोखर इतना गहरा और साफ–सुथरा है कि उसकी तलहटी नीली मालूम पड़ रही है। उस तलहटी में भूरी घास है और वह भी लहराती हुई दिखाई पड़ रही है। सूरज अपनी चमक के साथ पोखर के पानी में चाँदी के एक बड़े गोल खम्भे की तरह प्रतिबिंबित हो रहा है। पोखर के किनारे कई पत्थर हैं। कवि कल्पना करता है कि ये पत्थर मानो चुपचाप पानी पी रहे हैं। मगर ये तो न जाने किस जमाने से पानी पी रहे हैं! न जाने इनकी प्यास कब बुझेगी?

तालाब में एक बगुला चुपचाप खड़ा है। बिल्कुल ध्यान लगाए – 'वकोध्यानं'। तैरती हुई एक मछली को देखकर वह अपनी ध्यान–निद्रा के अभिनय को त्यागता है और चोंच में फुर्ती के साथ दबाकर गले में डाल लेता है। मछली बगुले के पेट में चली गई। एक दूसरी चतुर चिड़िया है जिसका माथा काला है। वह सफेद पंखोंवाली है। वह अचानक पानी पर झपट्टा मारती है और एक चंचल मछली को अपनी पीली चोंच में दबाकर दूर आकाश में उड़ जाती है।

पोखर के इन दृश्यों को दिखाने के बाद कवि बताता है कि पोखर के पास से ही जमीन क्रमशः ऊँची होने लगी है। उस ऊँचाई से रेल की पटरी गुजरी है। मगर अभी किसी ट्रेन के जाने का समय नहीं है। कवि को महसूस हो रहा है कि इस माहौल में वह पूरी तरह आजाद है। उसे कहीं आने–जाने का भी तनाव नहीं है। वह चारों तरफ नजर उठाकर देखता है कि चित्रकूट की पहाड़ियाँ दूर–दूर तक फैली हुई हैं। ये पहाड़ियाँ ज्यादा ऊँची नहीं हैं। ये आकार–प्रकार में भी सुगढ़ नहीं हैं। वहाँ की भूमि भी बंजर है। इधर–उधर रींवा के काँटेदार और कुरूप पेड़ दिखाई पड़ रहे हैं।

मगर इस पथरीली बंजर जमीन के वातावरण में भी तोते की आवाज सुनाई पड़ती है। सुग्गे जब टें टें बोलते हैं तो लगता है कि कानों में मीठा–मीठा रस टपक रहा हो! इस वन–भूमि के सन्नाटे को

चीरता हुआ सारस पक्षी का स्वर टिरटों टिरटों सुनाई पड़ता है। कवि का मन होता है कि पंख फैलाए उस सारस पक्षी के साथ वह उड़ जाए और वहाँ पहुँच जाए जहाँ वह अपनी जोड़ी के साथ रहता है। उसकी इच्छा है कि हरे–भरे खेतों में रहनेवाली इस जोड़ी की सच्ची प्रेम कहानी वह चुपचाप सुन ले और आनन्दित होता रहे।

**काव्य सौष्ठव**

- यह कविता चित्रकूट के निर्जन ग्रामीण इलाके की प्रकृति का चित्रण करती है। कवि ने पूरी आत्मीयता से प्रकृति के बीच घटित हो रही गतिविधियों को दिखाया है। यहाँ प्रकृति का मुख्य हिस्सा किसानी से जुड़ा है। फसलों का मानवीकरण करते हुए जो कुछ प्रस्तुत किया गया है, वह बहुत सुंदर बन पड़ा है।
- खेत, तालाब और पहाड़ी के बीच फसल, मछली और पक्षी को रखकर जो परिवेश रचा गया है, उसमे प्रगतिवाद की प्रेरणा काम कर रही है। कवि ने गैर–रोमैंटिक वातावरण के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया है।
- पूरी कविता में मात्रिक छंद का प्रवाह मौजूद है। छोटी–बड़ी पंक्तियों के सहारे कोशिश की गई है कि मात्रिक छन्द के प्रवाह में पूरी कविता लगभग कथा की तरह सुनाई जा सके।

**विशेष**

केदारनाथ अग्रवाल ने प्रगतिवादी दृष्टि को इस कविता में ऊँचाई प्रदान किया है। सैद्धांतिक शब्दावली से बचते हुए उन्होंने गाँवों के प्रति ध्यान खींचने का काम किया है। यह कविता गाँव के वातावरण को सजीव और आकर्षक तरीके से पेश करनेवाली शुरुआती कविताओं में महत्त्वपूर्ण है।

## चार

धूप

धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने

मैके में आयी बेटी की तरह मगन है

फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है

जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं

भैया की बाँहों से छूटी भौजाई–सी

लहँगे को लहराती लचती हवा चली है

सारंगी बजती है खेतों की गोदी में

दल के दल पक्षी उड़ते हैं मीठे स्वर के

अनावरण यह प्राकृत छवि की अमर भारती

रंग–बिरंगी पंखुरियों की खोल चेतना सौरभ से मँह–मँह महकाती है दिगंत को

मानव मन को भर देती है दिव्य दीप्ति से

शिव के नंदी–सा नदियों में पानी पीता

निर्मल नभ अवनी के ऊपर बिसुध खड़ा है
काल काग की तरह ठूँठ पर गुमसुम बैठा
सोयी आँखों देख रहा है दिवास्वप्न को।

**(17.01.1959, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं')**

**सन्दर्भ और प्रसंग**

'धूप' शीर्षक कविता में गाँव की कुछ छवियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। इसमें धूप का मानवीकरण हुआ है। उसे मनुष्य की तरह की गतिविधियों से जोड़कर चित्रित किया गया है। धूप के अलावा हवा आदि प्राकृतिक उपादानों को भी मनुष्य की तरह क्रियाशील दिखाया गया है।

**व्याख्या**

प्रस्तुत कविता में प्रगतिवाद के प्रतिनिधि कवि केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं कि धूप चमक रही है। ऐसा लगता है कि चाँदी की साड़ी पहनकर कोई बेटी अपने मायके में आयी है। मायके आयी हुई बेटी ससुराल की औपचारिकताओं से मुक्त होती है। वह मगन भी होती है और बेपरवाह भी। खिली हुई धूप, फूलों से लदी सरसों से ऐसे लिपट गयी है, जैसे दो हम–उम्र पुरानी सखियाँ बहुत दिनों के बाद मिलने पर छाती से लिपट जाती हैं।

बहुत प्यारी हवा चल रही है। कवि की कल्पना जगती है कि यह तो भौजाई के लहराते हुए लँहगे से चली हवा की तरह प्यारी मालूम पड़ रही है। भैया ने घर–भर की परवाह नहीं की और भौजाई को बाँहों में भर लिया था। भाभी लाज के मारे बाँहों से अपने को छुड़ा कर जब भागी तो लँहगे के लहराने से शृंगार में डूबी ऐसी ही हवा चली थी। कवि ने देवर–भाव से हवा पर टिप्पणी की है।

खेतों में न जाने कितने सुरीले पंछी उड़–बैठ रहे हैं। ऐसा लगता है कि इन खेतों की गोदी में ये पंछी सारंगी की तरह हैं और बज रहे हैं। प्रकृति की यह सुंदरता बिल्कुल खुले रूप में कवि के सामने है। उसे लगता है कि प्रकृति का यह खुला रूप ही विद्या की देवी का असली रूप है। इस छवि को ही 'अमर भारती' मान लेना चाहिए। यह अमर भारती फूलों की रंग–बिरंगी पंखुरियों को खोल कर अनंत सौरभ फैला देती है। वह सभी दिशाओं को सुगंध से भर देती है। वह मनुष्य के मन को अलौकिक चमक से भर देती है। इन सब के बीच रहनेवाला मनुष्य मानो अलौकिक सुख को प्राप्त करता है। कवि का संकेत है कि लोक की सुंदरता में ही अलौकिक का अस्तित्व है। अलौकिक की कोई दूसरी दुनिया नहीं है।

कविता के अगले चरण में कवि बताता है कि स्वच्छ आकाश धरती के ऊपर बेसुध झुका हुआ मालूम पड़ रहा है। ऐसा लगता है कि भगवान् शंकर का नंदी बैल झुककर नदियों से पानी पी रहा

हो! इन सुंदर दृश्यों को देखकर मानो समय भी स्तब्ध रह गया है। ऐसा लगता है कि सूखे हुए पेड़ पर बैठा हुआ कौआ काल (समय) है और वह हतप्रभ होकर खोयी–खोयी आँखों से इन दृश्यों को देख रहा है। उसे लग रहा है कि कहीं मैं जागते हुए सपने तो नहीं देख रहा?

कवि का ख्याल है कि गाँव की प्रकृति अलौकिक सुंदरता से सम्पन्न है। एकबारगी इस सुंदरता को देखकर विश्वास नहीं होता कि यह सब सच है!

---

**कठिन शब्द**

**फूली सरसों** – फूलों से युक्त सरसों की फ़सल, **हमजोली सखियाँ**– एक उम्र की दोस्त **भौजाई**–भाभी, **लचती**– लचकती हुई, **प्राकृत छवि** – प्राकृतिक सुंदरता, **अमर भारती** – प्रकृति मानो सरस्वती का शाश्वत रूप है, **सौरभ**– सुगंध, **दिगंत**– क्षितिज, **दिव्य दीप्ति**– अलौकिक चमक, **नन्दी**– भगवान शंकर के नन्दी बैल की तरह, **अवनी** – धरती, **बिसुध**– बेसुध, होश खोकर, **काल**–समय **दिवास्वप्न**– दिन में दिखनेवाला सपना, अत्यधिक काल्पनिक

---

**काव्य सौष्ठव**

- यह कविता गाँव की प्रकृति के कुछ दृश्यों को प्रस्तुत करती है।
- कवि का ख्याल है कि गाँव का परिवेश इतना सुंदर है कि उसे अलौकिक कहा जा सकता है।
- पूरी कविता में 24 – 24 मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है।

**विशेष**

चमकती हुई धूप में गाँव की प्रकृति के कुछ दृश्य रखकर कवि ने इस बात पर जोर दिया है कि हमारे देश के गाँव सुंदरता के प्रतीक हैं। गाँवों के प्रति झुकाव को बढ़ाने की कोशिश प्रगतिवाद की एक पहचान रही है।

**बोध प्रश्न–1**

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. 'माँझी न बजाओ बंशी' कविता का मूल भाव क्या है ?

    ........................................................................................................................................
    ........................................................................................................................................
    ........................................................................................................................................

2. 'घन गरजे जन गरजे' कविता में किस तरह की चेतना है?

    ........................................................................................................................................
    ........................................................................................................................................
    ........................................................................................................................................

3. 'चंद्रगहना से लौटती बेर' कविता में कुछ फसलों का किस रूप में जिक्र है?

    ........................................................................................................................................
    ........................................................................................................................................
    ........................................................................................................................................

4. 'धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने' में कवि ने किसका बिम्ब निर्मित किया है?

    ........................................................................................................................................
    ........................................................................................................................................
    ........................................................................................................................................

**बोध प्रश्न–2**

i. 'माँझी न बजाओ बंशी' शीर्षक कविता किस पुस्तक में है?
   क) युग की गंगा   ख) फूल नहीं रंग बोलते हैं   ग) लोक और आलोक
   घ) पंख और पतवार

ii. चंद्रगहना से लौटती बेर' किस काव्य–संग्रह की कविता है?

क) फूल नहीं रंग बोलते हैं ख) पंख और पतवार ग) हे मेरी तुम
घ) युग की गंगा

iii. केदारनाथ अग्रवाल ने प्रकृति–चित्रण में सबसे ज्यादा किस पद्धति का उपयोग किया है ?
क) अप्रस्तुत ख) मानवीकरण ग) रूपक घ) अन्योक्ति

iv. 'चटुल' शब्द का क्या अर्थ है?
क) बड़ी ख) शिथिल ग) छोटी घ) चंचल

v. 'टिरटों टिरटों' स्वर निकालनेवाला पक्षी कौन है?
क) सुग्गा ख) बगुला ग) सारस घ) काले माथे वाली चिड़िया

vi. 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' काव्य–संग्रह का प्रकाशन कब हुआ था?
क) 1947 ख) 1965 ग) 1957 घ) 1970

vii 'क्षिति' शब्द का क्या अर्थ है ?
क) क्षितिज ख) गगन ग) दिशा घ) धरती

viii 'बाँधे मुरैठा शीश पर' किसके लिए कहा गया है?
क) ठिंगना चना ख) अलसी ग) सरसों घ) फागुन

ix. 'चंद्रगहना से लौटती बेर' शीर्षक कविता में किस क्षेत्र की प्रकृति का चित्रण है?
क) गढ़वाल ख) छोटानागपुर ग) सतपुड़ा घ) चित्रकूट

x. 'धूप' शीर्षक कविता में कितनी मात्रा की पंक्तियों का उपयोग हुआ है?
क) 12 ख) 16 ग) 24 घ) 28

xi. केदारनाथ अग्रवाल का जन्म कब हुआ था?
क) 1909 ख) 1910 ग) 1911 घ) 1912

xii. केदारनाथ अग्रवाल की मृत्यु कब हुई थी?
क) 1998 ख) 1985 ग) 2002 घ) 2000

xiii. केदारनाथ अग्रवाल मूलतः किस धारा के कवि माने जाते हैं?
क) छायावादी ख) प्रयोगवादी ग) हालावादी घ) प्रगतिवादी

xiv. निम्नलिखित में से कौन–सी पुस्तक केदारनाथ अग्रवाल की नहीं है ?
क) नींद के बादल ख)हे मेरी तुम ग) युगधारा घ) लोक और आलोक

## 13.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

**बोध प्रश्न–1**

1. 'माँझी न बजाओ बंशी' कविता में कवि का मूल भाव यह है कि लोक कलाओं में गहरी आत्मीयता होती है। उसमें आकर्षित करने की अद्भुत ताकत होती है। उससे जुड़ने की कोशिश मात्र से हम उसमें डूबने लगते हैं। इसी बात को कहने के लिए कवि ने माँझी का

यह रूपक गढ़ा है। वह कहता है कि मैं माँझी की वंशी की आवाज से अनासक्त–अप्रभावित रहना चाहता हूँ। मगर ऐसा हो नहीं पाता। वंशी ज्यों–ज्यों बजती है, मैं उसमें डूबता जाता हूँ।

2. 'घन गरजे जन गरजे' कविता में प्रगतिवादी चेतना काम कर रही है। कवि बादलों की गर्जना मंक जनता के आक्रोश की ध्वनि को आरोपित कर रहा है। वह दिखलाना चाहता है कि अन्याय के खिलाफ व्यापक विद्रोह की सम्भावना बनी रहती है। वह बताना चाहता है कि शोषकों को किसी भ्रम में नहीं रहना चाहिए, उनका विरोध अवश्य होगा।

3. 'चंद्रगहना से लौटती बेर' कविता में चना, अलसी और सरसों का जिक्र है। एक बित्ते के बराबर का चना अपने सिर पर गुलाबी फूल के साथ सजा है। ऐसा लगता है कि वह गुलाबी रंग की पगड़ी बाँध कर शादी के लिए तैयार है। वहीं सट कर अलसी खड़ी है। वह देह से पतली और कमर से लचीली है। उसने नीले फूल को अपने सिर पर सजा रखा है। और उसने शर्त रख दी है कि जो इस फूल को छू देगा मैं उससे शादी कर लूँगी। सरसों तो अब बहुत सयानी हो गयी है। मानो हल्दी–उबटन लगाकर उसने हाथ पीले कर लिए हैं। वह ब्याह के मण्डप में आयी है।

4. 'धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने' में कवि ने मायके आयी हुई बेटी का बिम्ब निर्मित किया है। कवि कह रहा है कि चमकीली धूप निकली हुई है। ऐसा लगता है जैसे कोई बेटी ससुराल से मायके आयी है। वह चाँदी की चमकीली साड़ी पहने हुए है और अपने में मग्न है। फिर लगता है कि वह चमकीली धूप फूलों से लदी सरसों की फसल से लिपट गयी है। सरसों से वह ऐसे लिपट गयी है मानो दोनों हम–उम्र पुरानी सखियाँ हों।

**बोध प्रश्न–2**

i. ख
ii. क
iii. ख
iv. घ
v. ग
vi. ख
vii. घ
viii. क
ix. घ
x. ग
xi. ग
xii. घ
xiii. घ
xiv. ग

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

## 13.4 उपयोगी पुस्तकें


1. प्रतिनिधि कविताएँ : केदारनाथ अग्रवाल, संपादक – अशोक त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. परम्परा का मूल्यांकन – रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. केदारनाथ अग्रवाल : कविता का लोक आलोक, संपादक – संतोष भदौरिया



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# इकाई 14 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : नागार्जुन

**इकाई की रूपरेखा**

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

14.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

14.4 उपयोगी पुस्तकें

## 14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- नागार्जुन की चार कविताओं की विस्तृत व्याख्या समझ सकेंगी/सकेंगे;
- नागार्जुन की कविताओं की व्याख्या की दिशाओं को जान सकेंगी/सकेंगे;
- इन कविताओं के माध्यम से प्रगतिवाद आदि की विशिष्टताओं के बारे में समझ सकेंगी/सकेंगे;
- नागार्जुन की काव्य–भाषा को समझने का प्रयास कर सकेंगी/सकेंगे और
- नागार्जुन की शब्द–योजना और शब्दावली को जान सकेंगी/सकेंगे।

## 14.1 प्रस्तावना

नागार्जुन का जन्म 1911 में दरभंगा जिले के तरउनी नामक गाँव में हुआ था। इनकी पढ़ाई–लिखाई परंपरागत प्राचीन पद्धति से संस्कृत माध्यम से हुई थी। उन्होंने जीवन–भर व्यवस्थित रूप से जीविका का कोई निश्चित माध्यम नहीं अपनाया। इसलिए आर्थिक परेशानी हमेशा बनी रही। वे पारिवारिक रूप से भी सम्पन्न नहीं थे। घुमक्कड़ी के शौक ने उन्हें विविध अनुभवों से जुड़ने का मौका दिया, मगर परिवार के लिए उनका यह स्वभाव कष्टदायक रहा। उनकी मृत्यु 1998 को हुई।

नागार्जुन प्रगतिवादी कवि थे। 87 साल की लंबी उम्र पानेवाले नागार्जुन जवानी से लेकर बुढ़ापे तक 'जनकवि' की छवि से जुड़े रहे। उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी, मातृभाषा मैथिली, दूसरे प्रदेश की भाषा बांगला और शास्त्रीय भाषा संस्कृत में कविताएँ लिखीं। वे हिन्दी के बड़े कवियों में अकेले ऐसे कवि हैं जिसने चार भाषाओं में काव्य–रचना की है। उन्होंने 'यात्री' उपनाम से मैथिली में लिखा था।

**काव्य–संग्रह**

युगधारा (1953), सतरंगे पंखों वाली (1959), प्यासी पथराई आँखें (1962), तालाब की मछलियाँ (1974), तुमने कहा था (1980), खिचड़ी विप्लव देखा हमने (1980), हजार–हजार बाँहोंवाली (1981), पुरानी जूतियों का कोरस (1983), रत्नगर्भ (1984), ऐसे भी हम क्या : ऐसे भी तुम क्या!! (1985),

आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने (1986), इस गुब्बारे की छाया में (1990), भूल जाओ पुराने सपने (1994), अपने खेत में (1997)

**बुकलेट**

शपथ (1948), खून और शोले (1955), चना जोर गरम (1952), प्रेत का बयान (1958)

**खंड काव्य** : भस्मांकुर (1970)

**मैथिली काव्य–संग्रह** : चित्रा (1949), पका है यह कटहल (1995), पत्रहीन नग्न गाछ (1967)

**बंगला काव्य–संग्रह** : मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा (1997)

14.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

## 14.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

**एक**

**सिन्दूर तिलकित भाल**

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल!

याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल!

कौन है वह व्यक्ति जिसको चाहिए न समाज ?

कौन है वह जिसको नहीं पड़ता दूसरे से काज?

चाहिए किसको नहीं सहयोग?

चाहिए किसको नहीं सहवास?

कौन चाहेगा कि उसका शून्य में टकराय यह उच्छ्वास?

हो गया हूँ मैं नहीं पाषाण

जिसको डाल दे कोई कहीं भी

करेगा वह कभी कुछ न विरोध

करेगा वह कुछ नहीं अनुरोध

वेदना ही नहीं उसके पास

फिर उठेगा कहाँ से निःश्वास

मैं न साधारण, सचेतन जंतु

यहाँ हाँ – ना – किन्तु और परन्तु

यहाँ हर्ष–विषाद–चिंता–क्रोध

यहाँ है सुख–दुःख का अवबोध

यहाँ हैं प्रत्यक्ष औ' अनुमान

यहाँ स्मृति–विस्मृति के सभी के स्थान
तभी तो तुम याद आतीं प्राण,
हो गया हूँ मैं नहीं पाषाण!
याद आते स्वजन
जिनकी स्नेह से भींगी अमृतमय आँख
स्मृति–विहंगम की कभी थकने न देगी पाँख
याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आतीं लीचियाँ, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू–भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनि और तालमखान
याद आते शस्य–श्यामल जनपदों के
रूप–गुण–अनुसार ही रक्खे गये वे नाम
याद आते वेणुवन वे नीलिमा के निलय, अति अभिराम
धन्य वे जिनके मृदुलतम अंक
हुए थे मेरे लिए पर्यंक
धन्य वे जिनकी उपज के भाग
अन्न–पानी और भाजी–साग
फूल–फल औ' कंद–मूल, अनेक विध मधु–मांस
विपुल उनका ऋण, सधा सकता न मैं दशमांश
ओह, यद्यपि पड़ गया हूँ दूर उनसे आज
हृदय से पर आ रही आवाज–
धन्य वे जन, वही धन्य समाज
यहाँ भी तो हूँ न मैं असहाय
यहाँ भी हैं व्यक्ति औ' समुदाय
किन्तु जीवन भर रहूँ फिर भी प्रवासी ही कहेंगे हाय!
मरूँगा तो चिता पर दो फूल देंगे डाल
समय चलता जाएगा निर्बाध अपनी चाल
सुनोगी तुम तो उठेगी हूक

मैं रहूँगा सामने (तसवीर में) पर मूक

सांध्य नभ में पश्चिमांत–समान

लालिमा का जब करुण आख्यान

सुना करता हूँ, सुमुखि उस काल

याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल।

**(1943, 'सतरंगे पंखोंवाली')**

### सन्दर्भ और प्रसंग

'सिन्दूर तिलकित भाल' शीर्षक कविता 'सतरंगे पंखोंवाली' (1959) काव्य–संग्रह में संगृहीत है। इस कविता में प्रवासी व्यक्ति की मानसिक पीड़ा का चित्रण किया गया है। रोजी–रोटी के लिए अपना गाँव–घर छोड़कर लोग परदेश चले जाते हैं। कमाने–खाने वाले वर्ग का व्यक्ति निरंतर परेशानियाँ झेलता हुआ कई तरह की मानसिक पीड़ा से गुजरता है। उसे अपने घर–परिवार, गाँव–गिराँव, भाषा–बोली, खान–पान की बहुत याद आती है।

### व्याख्या

'सिन्दूर तिलकित भाल' शीर्षक कविता में नागार्जुन कहते हैं कि जीवन की परिस्थितियों ने मुझे घोर निर्जन में रहने को मजबूर किया है। ऐसा नहीं है कि इस जगह पर लोग नहीं रहते हैं, मगर यहाँ हमारे लोग नहीं रहते हैं। इसलिए मुझे बार–बार लगता है कि मैं निर्जन में रह रहा हूँ।

कवि अपनी पत्नी को याद करते हुए कहता है कि मुझे सिन्दूर से चमकता हुआ तुम्हारा ललाट याद आता है। इतनी दूर रहकर तुम्हें याद करता हूँ तो तुम्हारी वही छवि मुझे याद आती है कि तुमने अपनी माँग में सिन्दूर भर रखा है और ललाट पर सिन्दूर की बिंदी लगा रखी है।

भला बताओ कि ऐसा कौन होगा जिसे अपने समाज की जरूरत नहीं होती होगी? ऐसा कौन होगा जिसे एक–दूसरे से काम नहीं पड़ता होगा? ऐसा कौन होगा जिसे परस्पर सहयोग की जरूरत नहीं होती होगी? ऐसा कौन होगा जिसे अपने लोगों के साथ रहने की इच्छा नहीं होती होगी या दाम्पत्य–सुख की जरूरत नहीं पड़ती होगी? भला कौन चाहेगा कि तनाव के क्षणों में वह अकेला रहे! उसकी साँसें सूनेपन से टकराकर लौट जाएँ!

मैं कोई पत्थर तो हूँ नहीं कि संवेदनहीन हो जाऊँ? पत्थर को कहीं भी डाल दो, वह विरोध नहीं करेगा, कुछ अनुरोध भी नहीं करेगा क्योंकि वेदना को सहेजने या समझने की क्षमता उसके पास है ही नहीं! इसलिए तनाव में डूबी हुई लंबी साँसें वह नहीं ले सकता। मगर, मैं तो पत्थर हूँ नहीं। कवि होने के कारण साधारण लोगों की अपेक्षा कुछ ज्यादा संवेदनशील हूँ। मेरे पास ढेर सारी मानसिक उलझने हैं। मैं सपाट तरीके से नहीं सोच सकता। मेरे पास 'हाँ' भी है और 'ना' भी!

---

**कठिन शब्द**

**सिन्दूर तिलकित भाल** – स्त्री का सिन्दूर से सजा ललाट, **काज** – काम, जरूरत, **सहवास**– एक साथ रहना, दाम्पत्य–सुख, **शून्य**– अकेलापन, **उच्छ्वास**– लंबी साँस छोड़ना, **पाषाण**– निर्जीव, संवेदनहीन, **सचेतन जन्तु**– सम्वेदनशील मनुष्य, **हर्ष–विषाद**– खुशी और दुःख, **अवबोध**–समझ, एहसास, **प्रत्यक्ष औ' अनुमान**– ज्ञान के दो स्रोत **स्मृति–विस्मृति**– यादें और भुलावे, **स्वजन**–अपने लोग, **स्मृति–विहंगम**–यादें मानो पंछी हैं, **तरउनी ग्राम**– नागार्जुन के गाँव का नाम, **रुचिर भू–भाग**– सुंदर ग्रामीण क्षेत्र, **कुमुदिनि**– कमल का एक रूप, **तालमखान**– मखाना से भरे हुए तालाब, **शस्य–श्यामल**–फसलों की गहरी हरियाली,**वेणुवन**– बाँस के जंगल, **नीलिमा के निलय** – बाँस के जंगल नीले रंग के घर की तरह थे, **अति अभिराम**–अत्यधिक सुंदर, **मृदुलतम अंक**– वात्सल्य से भरी कोमल गोद, **पर्यंक** –पलंग, **भाजी–साग** –सब्जी और साग, **अनेकविध**–कई तरह के **मधु–मांस**– शराब और मांस,**दशमांश**– दस प्रतिशत, **प्रवासी**–बाहरी व्यक्ति, **पश्चिमांत–समान** – पश्चिम दिशा का अंतिम हिस्सा, **करुण आख्यान**–करुणा–दया से भरी हुई कथा, **सुमुखि**–सुंदर मुख वाली (पत्नी)

---

‘किन्तु’ भी ‘परन्तु’ भी! इसी तरह मैं ढेर सारी द्वंद्वात्मक मनःस्थितियों से गुजर रहा हूँ। हर्ष–विषाद, चिंता–क्रोध, सुख–दुःख के एहसास आदि के बीच डूबता–उतराता हुआ जीवन जी रहा हूँ। यहाँ प्रत्यक्ष से कुछ जानकारियाँ मिलती हैं तो कुछ के लिए अनुमान का सहारा लेना पड़ता है। यहाँ की जानकारी तो प्रत्यक्ष है, मगर तुम लोगों के बारे में जानने के लिए अनुमान से ही काम चलाना पड़ता है। यादों से कभी सहारा मिलता है, तो कभी भूल जाने से राहत मिलती है! इतनी उलझनों के बीच हूँ, तभी तो तुम्हारी बहुत याद आती है। तुम्हें याद करके मानो मेरे प्राण सहारा पा जाते हैं। मैं इंसान हूँ, पत्थर नहीं!

नागार्जुन आगे कहते हैं कि मुझे अपने लोगों की बहुत याद आती है। स्नेह के आँसुओं से भीगी हुई उन लोगों की अमृतमय आँखें याद आती हैं। वे आँखें मेरे स्मृति–विहंगम के पंखों को कभी थकने नहीं देंगी। मुझे अपना ‘तरउनी’ गाँव याद आता है। वहाँ की लीचियाँ याद आती हैं। वहाँ के आम याद आते हैं। मेरी मातृभूमि मिथिला के सुंदर भू–भाग याद आते हैं। धान की लहलहाती फसलें याद आती हैं। वहाँ के ताल–तलैया में कमल और कुमुदिनी के फूल खिलते हैं। उन तालों में मखाना की खेती होती है। ये सब याद आते हैं। मिथिला के विभिन्न क्षेत्र हरी–भरी फसलों से ढँके होते हैं। ऐसा लगता है कि उन क्षेत्रों के नाम उनके रूप और गुण के अनुसार रखे गए हैं। वहाँ बाँस के जंगल हैं। दूर से देखो तो वे जंगल नीलिमा के घर की तरह बहुत सुंदर लगते हैं। इन सबकी बहुत याद आती है।

मैं उन सबके प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनकी वात्सल्य भरी कोमल गोद का सुख मिला था। माँ–बाप के अलावा न जाने कितने लोगों ने गोद में रखकर खेलाया था और मैं उन गोदों में पलंग का सुख पाते हुए सो गया था। गाँव में रहते हुए न जाने किन–किन लोगों की उपज से बना भोजन ग्रहण करने का मौका मिला। अन्न–पानी–साग–सब्जी–मांस–मदिरा के अलावा क्या–क्या गिनवाऊँ? उन सबके प्रति आभार प्रकट करता हूँ! उन सबका मुझ पर कर्ज है। इस कर्ज का दस प्रतिशत भी चुकाने की क्षमता मुझमें नहीं है। मेरे लिए अफसोस की बात है कि मैं इन सबसे दूर आ गया हूँ। मगर मेरा मन बार–बार कहता है कि वे लोग और वह समाज धन्य हैं!

यद्यपि यहाँ भी रहते–रहते एक तरह का समाज बन गया है। यहाँ भी आपस में प्रेम–व्यवहार हो गया है। मैं यहाँ असहाय नहीं हूँ। लोगों से मित्रता है और आपस में सहयोग की भावना है। फिर भी एक दंश तो बना ही रहता है कि मैं बाहर का आदमी हूँ! मैं जीवन भर यहाँ रह जाऊँ तब भी लोग मुझे ‘प्रवासी’ यानी बाहरी समझेंगे और इसी तरह के नाम से याद करेंगे! यदि यहीं मर गया तो दो–चार फूल लोग डाल देंगे और फिर भूल जाएँगे! समय गुजरता जाएगा और मेरी कहीं भी निशानी नहीं होगी! मेरे न होने का सामाचार जब गाँव पर तुम सुनोगी तो रो–बिलख कर रह जाओगी। तुम्हारे ह्रदय में हूक लग जाएगी कि मेरे अंतिम समय में तुम लोगों के साथ मैं नहीं था! मेरी तस्वीर को तुम बार–बार देखोगी, लेकिन मैं तस्वीर में से तुम्हें चुपचाप देखता रहूँगा!

शाम के समय पश्चिम दिशा में जब सूरज डूबता है तो लालिमा का एक करुण आख्यान मुझे सुनाई देता है। डूबता हुआ सूरज और लालिमा लिए हुए पश्चिम का आकाश! इस दृश्य में मुझे अपने जीवन के अंत और सिन्दूर लगे तुम्हारे ललाट का ध्यान हो आता है।

**काव्य सौष्ठव**

- यह कविता प्रवास की पीड़ा को व्यक्त करती है।
- अपने जन्म–स्थान और परिवेश के प्रति स्वाभाविक लगाव को सुंदर तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

- रोजी–रोजगार की मजबूरी कमाने–खानेवाले को प्रवासी बनने को मजबूर करती है। प्रवास का अर्थ है 'बाहरी' बनकर रहना। यह भावबोध जीवन के प्रति आत्मविश्वास को कमजोर कर देता है।
- 10, 17, 21, 24 और 31 मात्राओं की पंक्तियों की सहायता से इस कविता का निर्माण हुआ है। इसमें 17 मात्राओं की पंक्तियाँ सबसे ज्यादा हैं। कवि ने इन पंक्तियों को रखने का कोई निश्चित क्रम नहीं अपनाया है। उसका प्रयास है कि कहन शैली में पूरी कविता का प्रवाह बना रहे!

**विशेष**

नागार्जुन ने इस कविता के माध्यम से बताना चाहा है कि मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह अपनों के बीच जीवन व्यतीत करे। जीवन की परिस्थितियाँ उसे प्रवास को मजबूर करती हैं, मगर बाहर की दुनिया में उसे आत्मीयता का अभाव हमेशा महसूस होता है।

## दो

अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास

कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास

कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद

धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद

चमक उठीं घर भर की आँखें कई दिनों के बाद

कौए ने खुजलाईं पाँखें कई दिनों के बाद

**(1952, 'सतरंगे पंखोंवाली')**

**सन्दर्भ और प्रसंग**

'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता 'सतरंगे पंखोंवाली' (1959) काव्य–संग्रह में संगृहीत है। इस कविता का प्रसंग अकाल की घटना से जुड़ा है। अकाल से बेबस ग्रामीण जीवन के सांकेतिक दृश्य इस कविता में व्यक्त हुए हैं। यहाँ मनुष्य को सामने रखे बगैर अकाल की भयानकता को प्रस्तुत किया गया है।

---

**कठिन शब्द**

**चक्की**– जाँता, हाथ से अनाज पीसनेवाली चक्की, **भीत**– दीवार, **गश्त** –इधर से उधर कदमताल करना, **शिकस्त**–पराजय, हार जाना, **पाँखें** – पंख, डैना

---

**व्याख्या**

नागार्जुन ने आठ पंक्तियों की इस कविता को दो हिस्से में संरचित किया है। चार–चार पंक्तियों के इन दो टुकड़ों में व्यवस्थित तरीके से बातें रखी गयी हैं। पहले टुकड़े में 'अकाल' है और दूसरे टुकड़े में 'उसके बाद' का चित्रण है। वैसे तो अकाल के अनेक आयाम हैं। इस कविता में 'दाने' अर्थात् अनाज के माध्यम से, अकाल और अकाल के बाद की स्थिति की, कुछ झाँकियाँ हमारे सामने रखी गयी हैं। इस कविता के प्रतीक और संकेत महत्त्वपूर्ण हैं।

पहली चारों पंक्तियों की शुरुआत इस टुकड़े से होती है – 'कई दिनों तक'। इसी तरह अंतिम चारों पंक्तियों की समाप्ति इस टुकड़े से होती है – 'कई दिनों के बाद'। इस कविता की प्रत्येक पंक्ति में 27 मात्राएँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ऊपर के दो टुकड़ों (क्रमशः 8 और 11 मात्राएँ) की आवृत्ति को देखकर कहा जा सकता है कि कवि के पास कुल मिलाकर बहुत कम जगह बची है अपनी बात कहने के लिए! कविता सशक्त हो पायी है अपनी प्रतीकात्मकता और संकेतात्मकता के कारण।

पहली चार पंक्तियों में नागार्जुन बताते हैं कि अकाल का हाल यह है कि कई दिनों तक उस घर में चूल्हा जलने की नौबत नहीं आयी। घर में पकाकर खाने लायक कुछ था ही नहीं! चक्की भी कई दिनों तक उदास रही क्योंकि घर में पीसने के लिए अनाज था ही नहीं! चूल्हा और चक्की को लक्ष्मी मानते हैं। उन्हें पवित्र मानते हैं। मगर अकाल ने ऐसी बेबसी दे दी है कि चूल्हे–चक्की के पास कानी कुतिया रोज सोती रही, मगर उसे हटाने का ख्याल किसी के मन में नहीं आया। ऐसा पहले तो नहीं होता था! जब घर में अनाज ही नहीं था, तब रात में दीया–बत्ती जलाने की नौबत भला कहाँ से आती! इसके लिए तेल की जरूरत थी। तेल की बारी तो अनाज के बाद आती है! दीया–बत्ती नहीं जली तो रात में कीड़े–फतिंगे भी नहीं आए। छिपकलियाँ दीवारों पर कई दिनों तक घूमती रहीं कि खाने के लिए कोई कीड़ा–फतिंगा मिल जाए! ऐसी ही स्थिति घर के चूहों की भी रही। वे बार–बार तलाशते रहे कि कहीं कुछ मिल जाए, मगर उन्हें हार के सिवा कुछ न मिला।

अगली चार पंक्तियों में घर के अंदर अनाज आने के बाद के दृश्य हैं। कई दिनों के बाद घर में कुछ अनाज आया। चूल्हा जल उठा और आँगन से धुआँ उठा। नागार्जुन लिखते हैं कि 'घर–भर की आँखें' चमक उठीं। ये आँखें किनकी हैं? ये आँखें कुतिया, छिपकलियों और चूहों की तो हैं ही इन आँखों में वे आँखें भी शामिल हैं जो घर के मनुष्यों की हैं। पूरी कविता में मनुष्यों का जिक्र इन आँखों के माध्यम से ही आया है। सांकेतिकता की ऐसी क्षमता इस कविता को महत्त्वपूर्ण बनाती है। और अंत में नागार्जुन लिखते हैं कि कौए ने कई दिनों के बाद, कुछ जूठन खाकर अपनी चोंच को पोंछने के लिए, अपने पंखों को खुजलाया है!

**काव्य सौष्ठव**

- अकाल पर इतनी सटीक कविता हिन्दी में कम ही लिखी गयी है।
- अकाल की भयावहता को भाषा की भयावहता के बिना प्रस्तुत कर देना इस कविता की सफलता है।
- शोक का सहारा लिए बगैर यह कविता करुणा का आख्यान रचती है।
- यह कविता कुछ घरेलू विवरणों के माध्यम से मनुष्य की त्रासदी को व्यक्त कर रही है।
- 27 मात्राओं की पंक्तियों से इस कविता का निर्माण हुआ है। 16 और 11 मात्रा पर यति है। अंत में लघु है। यह सरसी छंद है। चौपाई का एक चरण (16 मात्रा) और दोहा का सम चरण (11 मात्रा) मिलाने से सरसी छंद बनता है।

**विशेष**

अकाल मनुष्य के जीवन को खतरे में डाल देता है। मनुष्य के आस–पास रहनेवाले जीव–जंतु भी इस भयावह समस्या से ग्रस्त होते हैं।

**तीन**

बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी–सुनहली फसलों की मुसकान
—बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी–भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
—बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी–भर सूँघे
मौलसिरी के ढेर–ढेर से ताजे–टटके फूल
—बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी–भर छू पाया
अपनी गँवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल
—बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी–भर तालमखाना खाया

गन्ने चूसे जी–भर

–बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद

अब की मैंने जी–भर भोगे

गंध–रूप–रस–स्पर्श सब साथ–साथ इस भू पर

–बहुत दिनों के बाद

**(1958, 'सतरंगे पंखोंवाली')**

**सन्दर्भ और प्रसंग**

'बहुत दिनों के बाद' शीर्षक कविता 'सतरंगे पंखोंवाली' (1959) काव्य–संग्रह में संगृहीत है। कवि बहुत दिनों के बाद अपने गाँव लौटा है। वह लम्बे समय तक गाँव से बाहर रहा है। गाँव लौटने पर उसे अपनी पुरानी अनुभूतियों को एक बार फिर महसूस करने का मौका मिला है।

**व्याख्या**

नागार्जुन 'बहुत दिनों के बाद' शीर्षक कविता में अपने गाँव से लगाव को कई तरह से प्रकट करते हैं। जीवन की परिस्थितियों के कारण घर से दूर चले जाने की मजबूरी कई लोगों के सामने आती है। बाहर जाकर हम कई तरह की सफलताएँ भी प्राप्त करते हैं। कई बार हमारी जिन्दगी में समृद्धि भी आती है, मगर अपनी जगह का आकर्षण हमारे भीतर बना हुआ रहता है।

नागार्जुन इन्हीं परिस्थितियों के बीच अपने गाँव को लौटे हैं और वे कह रहे हैं कि बहुत दिनों के बाद मैंने सुनहले रंग की पकी फसलों को मुस्कुराते हुए जी–भर के देखा है। यह कवि का लगाव है कि उसे फसलें मुस्कुराती हुई जान पड़ती हैं!

इसी तरह की बात कवि आगे भी कहता है कि बहुत दिनों के बाद मैंने धान कूटती हुई लड़कियों के कोकिल–कंठ से गीत सुने हैं। उन गीतों को मैं जी–भर सुनता रहा। बहुत दिनों के बाद मैंने मौलसिरी के ताजे–ताजे फूलों की जी–भर सूँघा है। बहुत दिनों के बाद मैंने अपने गाँव के कच्चे रास्तों की धूल को जी–भर कर छुआ है। मुझे यह धूल चंदन के रंग की मालूम पड़ती है। बहुत दिनों के बाद मैंने ताल में पैदा हुए मखाने को जी–भर कर खाया है, जी–भर कर गन्ने चूसे हैं।

अब की बार बहुत दिनों के बाद मैंने अपने गाँव की धरती पर आकर जाना है कि गंध, रूप, रस, शब्द और स्पर्श को जी–भर कर भोगने का असली मतलब क्या होता है? मैंने 'मौलसिरी' से गंध को, 'पकी–सुनहली फसलों' से रूप को, 'तालमखाना और गन्ने' से रस को, 'किशोरियों की कोकिल–कंठी तान' से शब्द को और 'चन्दनवर्णी धूल' से स्पर्श को महसूस किया है। इन्द्रियों की सार्थकता मानो यहीं लौटकर महसूस हुई है।

---

**कठिन शब्द**

**कोकिल**–कंठी, **तान**–कोयल की सुरीली आवाज, **टटके फूल**– ताजे फूल, **गँवई पगडंडी** – गाँव के कच्चे रास्ते, **चन्दनवर्णी धूल**–चन्दन के रंग की धूल, **तालमखान** – तालाब में पैदा हुआ मखाना, **गन्ध–रूप–रस–शब्द–स्पर्श** – पाँच इन्द्रियों से जुड़े गुणय नाक से गंध, आँख से रूप, जीभ से रस, कान से शब्द और त्वचा से स्पर्श का सम्बन्ध है।

---

### काव्य सौष्ठव

- प्रवासी के जीवन से निकल चुकी आत्मीयता को यह कविता चित्रित करती है।
- अपना परिवेश हमारे प्रत्येक पक्ष से स्वाभाविक रूप से जुड़ जाता है।
- इस कविता की छंद–योजना में चौपाई के एक चरण (16 मात्रा) तथा दोहा के सम चरण (11 मात्रा) का उपयोग ज्यादा हुआ है। दोनों को जोड़कर 27 मात्राओं की पंक्तियाँ भी रखी गयी हैं, जिसे सरसी छंद कहते हैं।

### विशेष

नागार्जुन की यह कविता सुगठित है। अनुभूतियों के पाँच रूपों और स्रोतों के परम्परागत आधार पर रची गयी यह कविता कुल छह चरणों में है। पाँच में पाँचों इन्द्रियाँ इस क्रम से सक्रिय हैं– आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ। छठे चरण में उपसंहार है।

### चार

कालिदास

कालिदास सच–सच बतलाना!
इंदुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोए थे
कालिदास सच–सच बतलाना!

शिवजी की तीसरी आँख से
निकली हुई महाज्वाला में
घृतमिश्रित सूखी समिधा–सम
कामदेव जब भस्म हो गया
रति का क्रंदन सुन आँसू से
तुमने ही तो दृग धोए थे?
कालिदास सच–सच बतलाना
रति रोई या तुम रोए थे?

वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका
प्रथम दिवस आषाढ़ मास का
देख गगन में श्याम घन–घटा
विधुर यक्ष का मन जब उचटा
खड़े–खड़े तब हाथ जोड़कर

चित्रकूट के सुभग शिखर पर
उस बेचारे ने भेजा था
जिनके ही द्वारा संदेशा
उन पुष्करावर्त मेघों का
साथी बनकर उड़नेवाले
कालिदास सच–सच बतलाना
परपीड़ा से पूर–पूर हो
थक–थककर औ' चूर–चूर हो
अमल–धवल गिरि के शिखरों पर
प्रियवर, तुम कब तक सोए थे?
रोया यक्ष कि तुम रोए थे?
कालिदास सच–सच बतलाना!

**(1938, 'सतरंगे पंखोंवाली')**

### सन्दर्भ और प्रसंग

'कालिदास' शीर्षक कविता 'सतरंगे पंखोंवाली' (1959) काव्य–संग्रह में संगृहीत है। 'नागार्जुन रचनावली' के अनुसार यह नागार्जुन की तीसरी कविता है। पहली कविता है 'निर्वासित' और दूसरी है 'बेकार'। नागार्जुन की शुरुआती कविता होने के बावजूद यह एक प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कविता है। नागार्जुन ने अपने प्रिय कवि कालिदास से कुछ प्रश्न पूछे हैं। इन प्रश्नों का सारांश यह है कि साहित्य में वर्णित भावनाओं का सम्बन्ध स्वयं रचनाकार से किस तरह का होता है? रचना में यदि दुःख वर्णित है तो क्या इसका सम्बन्ध कवि के निजी दुःख से होता है?

### व्याख्या

नागार्जुन की औपचारिक शिक्षा संस्कृत माध्यम से हुई थी। उनके प्रिय कवि थे कालिदास। संस्कृत से उनका रिश्ता जीवन भर बना रहा। उन्होंने संस्कृत में कुछ कविताएँ भी लिखी थीं। नागार्जुन अपने प्रिय कवि कालिदास से उनके ही साहित्य का हवाला देकर कुछ प्रश्न पूछते हैं। वे कहते हैं कि तुम्हारे महाकाव्य 'रघुवंशम' में अज का विलाप है। राम के दादा अज अपनी पत्नी इंदुमती की मृत्यु पर बहुत रोए थे। कालिदास ने इस प्रसंग का मार्मिक चित्रण किया है। नागार्जुन पूछते कि हे मेरे प्रिय और आदरणीय कवि कालिदास! सच–सच बतलाओ कि इस विलाप से तुम्हारा भी कुछ

---

**कठिन शब्द**

**इन्दुमती**– राम के दादा अज की पत्नी, **अज –** राम के दादा और दशरथ के पिता, **शिवजी की तीसरी आँख**– भगवान् शंकर क्रोध में अपनी तीसरी आँख खोलते हैं, **महाज्वाला**–शंकर की तीसरी आँख से निकली हुई आग, **घृत–मिश्रित सूखी समिधा–सम** – सूखी हुई हवन–सामग्री में घी लपेट दिया गया, **कामदेव**– प्रेम का देवता, **रति –** कामदेव की पत्नी, **दृग धोये थे** – आँसुओं से आँखों का धुल जाना **स्निग्ध भूमिका –** नमी से भरी पृष्ठभूमि, **विधुर यक्ष**–वियोगी यक्ष, **सुभग शिखर**– सुंदर पर्वत–शिखर **पुष्करावर्त मेघों** –मेघों के वंश – पुष्कर, आवर्तक आदि, **पर पीड़ा**– दूसरे की तकलीफ, **पूर–पूर –** डूब जाना, भर जाना

रिश्ता था क्या? क्या तुमने भी इस तरह का दुःख अपने जीवन में उठाया था? यदि नहीं तो फिर ऐसा चित्रण तुम कैसे कर पाए?

आगे वे कालिदास के महाकाव्य 'कुमारसंभवम' के एक प्रसंग की चर्चा करते हैं कि भगवान् शंकर की तीसरी आँख से आग निकली थी और कामदेव जल कर राख हो गया था। जैसे हवन की सूखी हुई सामग्री घी से मिश्रित होकर तेजी से जलती है, वैसे ही कामदेव धधक कर जल उठा था। कामदेव की पत्नी रति चीत्कार कर रो उठी थी। उसका विलाप तुम कैसे लिख पाए। ऐसा लगता है कि इस तरह का विलाप तुमने भी कभी–न–कभी किया था और आँसुओं के जल से तुमने अपनी आँखें धोयी थीं। सच–सच बतलाना कि तुम्हारी कविता में रति रो रही थी कि तुम रो रहे थे?

कविता के तीसरे चरण में नागार्जुन कालिदास के गीतिकाव्य 'मेघदूतम' के प्रसंग उठाते हैं। वे कहते हैं कि बेचारा यक्ष रामगिरि आश्रम में सजा काट रहा था। उसे एक वर्ष तक वहीं रहने की सजा दी गयी थी। आठ महीने बीत जाने के बाद जब आषाढ़ का महीना आया तब वर्षा ऋतु की नमी से भरी हवा चली। वर्षा की स्निग्ध भूमिका बनने लगी। आकाश में काली घटाएँ छाने लगीं, जिन्हें देखकर वियोगी यक्ष का धैर्य डोल गया। अब तो उसने अपनी प्रेम–पीड़ा पर नियंत्रण बनाए रखा था, मगर बरसात के परिवेश ने उसके मन को उचाट कर दिया। उसका दिमाग बहक गया। उस बेचारे यक्ष ने भावातिरेक में आकर चित्रकूट के उस सुंदर शिखर पर खड़े होकर हाथ जोड़ लिए। उसने बादलों से कहा कि मेरे संदेश मेरी प्रिया तक पहुँचा दो! उसने बादलों को घर जाने के रास्ते भी बताए और प्रिया तक पहुँचाने वाले संदेश भी! वे मेघ पुष्कर और आवर्तक वंश के थे, ऐसा भावुक यक्ष ने पहचाना था!! हे कवि–कुलगुरु महाकवि कालिदास! उन बादलों के साथी की तरह मानो तुम साथ–साथ थे। यक्ष की पीड़ा तुम्हारे लिए पराई पीड़ा थी, मगर तुम तो उसमें पूरी तरह डूबे हुए मालूम पड़ते हो। तुम्हारी कविता इस बात की गवाही देती है। यह बताओ कि यक्ष की पीड़ा की थकावट से चूर–चूर होकर पर्वत के स्वच्छ शिखरों पर तुम कितनी देर तक या कितने दिनों तक सोये रहे थे? लगता है कि यक्ष की तरह तुम भी कभी अकेलेपन की यातना से गुजरे थे। सच–सच बतलाना कि तुम्हारी कविता में रोनेवाला यक्ष था या खुद तुम थे!

**काव्य सौष्ठव**

- यह कविता कवि के अनुभव को कविता में तलाशने की कोशिश है।
- एक तरह से इस कविता में इस बात का पक्ष लिया गया है कि अनुभूति की निजता के बिना प्रभावशाली अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है।
- यहाँ 'परकाया प्रवेश' जैसे सिद्धांतों पर भी विचार की गुंजाइश है। दूसरे के व्यक्तित्व में समाकर उसके भावों को समझने की कोशिश को 'परकाया प्रवेश' कहते हैं। मानो कवि अपने पात्रों के व्यक्तित्व में प्रवेश करके उनकी अनुभूतियों को समझता है। पूरी कविता में 16–16 मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है।

**बोध प्रश्न –1**

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता में प्रवासी की उपेक्षा को किस रूप में व्यक्त किया गया है ?

   ..........................................................................................................................................................

   ..........................................................................................................................................................

   ..........................................................................................................................................................

2. 'अकाल और उसके बाद' कविता के छंद–विधान पर विचार करें?

   ..........................................................................................................................................................

   ..........................................................................................................................................................

   ..........................................................................................................................................................

3. 'बहुत दिनों के बाद' कविता की रचनात्मक योजना को स्पष्ट करें?

   ..........................................................................................................................................................

   ..........................................................................................................................................................

   ..........................................................................................................................................................

4. 'कालिदास' कविता में काव्य–रचना की किस प्रक्रिया पर विचार किया गया है?

   ..........................................................................................................................................................

   ..........................................................................................................................................................

   ..........................................................................................................................................................

**बोध प्रश्न –2**

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

i. 'सिन्दूर तिलकित भाल' शीर्षक कविता किस पुस्तक में है?
क) युगधारा ख) सतरंगे पंखों वाली ग) प्यासी पथराई आँखें घ) हजार–हजार बाँहोंवाली

ii. 'कालिदास' किस काव्य–संग्रह की कविता है?
क) सतरंगे पंखों वाली ख) युगधारा ग) प्यासी पथराई आँखें घ)पुरानी जूतियों का कोरस

iii. 'सिन्दूर तिलकित भाल' शीर्षक कविता में कवि ने अपने गाँव का क्या नाम बताया है ?
क) चंद्रगहना ख) तरउनी ग) सोनबरसा घ) विसपी

iv. गँवई पगडंडी की धूल को नागार्जुन ने क्या कहा है?
क) रजतवर्णी ख) स्वर्णवर्णी ग) हीरकवर्णी घ) चन्दनवर्णी

v. नागार्जुन को किस क्षेत्र के 'रुचिर भू–भाग' याद आते है?
क) मगध ख) संथाल परगना ग) मिथिला घ) पूर्वांचल

vi. 'सतरंगे पंखोंवाली' काव्य–संग्रह का प्रकाशन कब हुआ था ?
क) 1953 ख) 1959 ग) 1957 घ) 1970

vii. 'अकाल और उसके बाद' कविता में कितनी मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है ?
क) 21 ख) 31 ग) 24 घ) 27

viii. 'कालिदास' कविता में कितनी मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है?
क) 16 ख) 12 ग) 17 घ) 28

ix. नागार्जुन का जन्म कब हुआ था?
क) 1909 ख) 1910 ग) 1911 घ) 1912

x. नागार्जुन की मृत्यु कब हुई थी?
क) 1998 ख) 1985 ग) 2002 घ) 1998

xi. नागार्जुन मूलतः किस धारा के कवि माने जाते हैं?
क) छायावादी ख) प्रयोगवादी ग) हालावादी घ) प्रगतिवादी

## 14.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

**बोध प्रश्न–1**

1. 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता में प्रवासी की उपेक्षा को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि यदि मैं यहाँ जीवन भर भी रह जाऊँ तब भी लोग मुझे 'प्रवासी' ही समझेंगे! लोग यही कहेंगे कि 'बाहरी' है या 'बिहारी' है। जीवन व्यतीत करते हुए यदि यहीं मर गया तो लोग सहानुभूति के दो फूल चढ़ा जाएँगे! कोई यह नहीं कहेगा कि 'हमारा' कोई चला गया। लोग यही कहेंगे कि बेचारा बाहर का था, भला आदमी था, अब नहीं रहा!

2. 'अकाल और उसके बाद' कविता का निर्माण 27 मात्राओं की पंक्तियों से हुआ है। 16 और 11 मात्रा पर यति है। अंत में लघु है। यह सरसी छंद है। चौपाई का एक चरण (16 मात्रा) और दोहा का सम चरण (11 मात्रा) मिलाने से सरसी छंद बनता है।

   कई दिनों तक चूल्हा रोया = 16 मात्रा = चौपाई का एक चरण

   चक्की रही उदास = 11 मात्रा = दोहा का सम चरण

   इसी ढाँचे पर इस कविता की आठों पंक्तियाँ गठित हैं।

3. 'बहुत दिनों के बाद' कविता की रचनात्मक योजना पाँच इन्द्रियों के आधार पर बनायी गयी है। नागार्जुन की यह कविता सुगठित है। अनुभूतियों के पाँच रूपों और स्रोतों के परम्परागत आधार पर रची गयी यह कविता कुल छह चरणों में है। पाँच में पाँचों इन्द्रियाँ इस क्रम से सक्रिय हैं – आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ। छठे चरण में उपसंहार है।

   नागार्जुन कहते हैं कि अब की बार बहुत दिनों के बाद मैंने अपने गाँव की धरती पर आकर जाना है कि गंध, रूप, रस, शब्द और स्पर्श को जी–भर कर भोगने का असली मतलब क्या होता है? मैंने 'मौलसिरी' से गंध को, 'पकी–सुनहली फसलों' से रूप को, 'तालमखाना और गन्ने' से रस को, 'किशोरियों की कोकिल–कंठी तान' से शब्द को और 'चन्दनवर्णी धूल' से स्पर्श को महसूस किया है। इन्द्रियों की सार्थकता मानो यहीं लौटकर महसूस हुई है।

इस तरह यह कविता एक सुस्पष्ट रचनात्मक ढाँचे में रची गयी है।

4. 'कालिदास' कविता में विचार किया गया है कि साहित्य में वर्णित भावनाओं का सम्बन्ध स्वयं रचनाकार से किस तरह का होता है? रचना में यदि दुःख वर्णित है तो क्या इसका सम्बन्ध कवि के निजी दुःख से होता है? यहाँ कवि के अनुभव को कविता में तलाशने की कोशिश की गयी है। इस कविता में इस बात का पक्ष लिया गया है कि अनुभूति की निजता के बिना प्रभावशाली अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। यहाँ 'परकाया प्रवेश' जैसे सिद्धांतों पर भी विचार की गुंजाइश है। दूसरे के व्यक्तित्व में समाकर उसके भावों को समझने की कोशिश को 'परकाया प्रवेश' कहते हैं। मानो कवि अपने पात्रों के व्यक्तित्व में प्रवेश करके उनकी अनुभूतियों को समझता है।

**बोध प्रश्न–2**

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

i. ख
ii. क
iii. ख
iv. घ
v. ग
vi. ख
vii. घ
viii. क
ix. ग
x. घ
xi. घ

## 14.4 उपयोगी पुस्तकें


1. नागार्जुन की कविता अजय तिवारी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
2. प्रतिनिधि कविताएँ – नागार्जुन, सं.– नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. काव्य–भाषा और नागार्जुन की कविता – कमलेश वर्मा, पेरियार प्रकाशन, पटना

# इकाई 15 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : रामधारी सिंह ‘दिनकर’

**इकाई की रूपरेखा**

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

15.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

15.4 उपयोगी पुस्तकें

## 15.0 उद्देश्य

**इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :**

- रामधारी सिंह ‘दिनकर’ की चार कविताओं की विस्तृत व्याख्या समझ सकेंगी/सकेंगे;
- ‘दिनकर’ की कविताओं की व्याख्या की दिशाओं को जान सकेंगी/सकेंगे;
- इन कविताओं के माध्यम से ‘दिनकर’ की काव्यात्मक विशिष्टताओं को जान सकेंगी/सकेंगे;
- ‘दिनकर’ की काव्य–भाषा को समझने का प्रयास कर सकेंगी/सकेंगे;
- ‘दिनकर’ की शब्द–योजना और शब्दावली को जान सकेंगी/सकेंगे।

## 15.1 प्रस्तावना

दिनकर जी का जन्म 23 सितंबर 1908 को बिहार के बेगूसराय जिले के सिमरिया गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम रवि सिंह तथा माता का नाम मनरूप देवी था। दिनकर की प्राथमिक शिक्षा गाँव से पूरी हुई। वे हाई स्कूल की परीक्षा मोकामाघाट से उतीर्ण हुए। उसके बाद वे पटना चले आए और पटना कॉलेज से इतिहास विषय में बी.ए. ऑनर्स की परीक्षा पास की। उन्होंने कई तरह की सरकारी और प्राइवेट नौकरी की। वे कुलपति के पद पर भी रहे और सांसद भी।

दिनकर में राजनीतिक चेतना प्रखर थी जिसकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में खूब हुई है। उनपर गाँधीवाद का गहरा प्रभाव पड़ा, हालाँकि वे गाँधीवाद के प्रति असहमति दर्ज करनेवाली कविताएँ भी एक दौर में लिख चुके थे। वे जवाहरलाल नेहरू के निकट थे, मगर ‘परशुराम की प्रतीक्षा’ की कविताओं में उनके शासनकाल की आलोचना भी दिखाई पड़ती है। ‘संस्कृति के चार अध्याय’ के लिए ‘साहित्य अकादमी’ और ‘उर्वशी के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से वे सम्मानित हुए।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की मृत्यु 24 अप्रैल,1974 में हुई थी।

**काव्य कृतियाँ**

रेणुका (1935), हुंकार (1938), रसवन्ती (1939), द्वंद्वगीत (1940), कुरूक्षेत्र (1946), सामधेनी (1947), बापू (1947), इतिहास के आँसू (1951), रश्मिरथी (1952), दिल्ली (1954), नीम के पत्ते (1954), नील कुसुम (1955), चक्रवाल (1956), सीपी और शंख (1957), उर्वशी (1961), परशुराम की प्रतीक्षा (1963), हारे को हरिनाम (1970), रश्मिलोक (1974)

### गद्य कृतियाँ

मिट्टी की ओर 1946, अर्धनारीश्वर 1952, रेती के फूल 1954, संस्कृति के चार अध्याय 1956, पन्त–प्रसाद और मैथिलीशरण 1958, वेणुवन 1958, धर्म, नैतिकता और विज्ञान 1969, लोकदेव नेहरू 1965, शुद्ध कविता की खोज 1966, साहित्य–मुखी 1968, राष्ट्रभाषा आंदोलन और गांधीजी 1968, हे राम! 1968, संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ 1970, भारतीय एकता 1971, मेरी यात्राएँ 1971, दिनकर की डायरी 1973, चेतना की शिला 1973।

## 15.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

### एक

**रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद**

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद,
आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है!
उलझनें अपनी बनाकर आप ही फँसता,
और फिर बेचैन हो जगता, न सोता है।

जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूँ?
मैं चुका हूँ देख मनु को जनमते–मरतेय
और लाखों बार तुझ–से पागलों को भी
चाँदनी में बैठ स्वप्नों पर सही करते।

आदमी का स्वप्न? है वह बुलबुला जल काय
आज उठता और कल फिर फूट जाता हैय
किन्तु, फिर भी धन्य ठहरा आदमी ही तो?
बुलबुलों से खेलता, कविता बनाता है।

मैं न बोला, किन्तु, मेरी रागिनी बोली,
देख फिर से, चाँद! मुझको जानता है तू?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं? है यही पानी?
आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू?

मैं न वह जो स्वप्न पर केवल सही करते,

आग में उसको गला लोहा बनाती हूँ,
और उस पर नींव रखती हूँ नये घर की,
इस तरह दीवार फौलादी उठाती हूँ।

मनु नहीं, मनु–पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है,
वाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
'रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे,
रोकिये, जैसे बने इन स्वप्नवालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं वे।'

**'सामधेनी' (1946)**

### सन्दर्भ और प्रसंग

चाँद और कवि की बातचीत के माध्यम से यह बताने की कोशिश की गयी है कि मनुष्य अब साधन–सम्पन्न हो गया है। विज्ञान की ताकत ने उसके इरादों को खतरनाक बना दिया है।

### व्याख्या

'रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' शीर्षक कविता में रामधारी सिंह दिनकर ने आधुनिक युग के मनुष्य की वैज्ञानिक क्षमताओं के दुरूपयोग पर विचार किया है। विज्ञान के विकास ने मनुष्य को तरह–तरह की तकनीक उपलब्ध कराई है। इसने मनुष्य के जीवन को सुगम–सुंदर बनाया है। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि इसने विध्वंस की तकनीक को भी आविष्कृत किया है। पहले की तुलना में आज के युद्धों में ज्यादा विनाश होता है।

चाँद और कवि की बातचीत के माध्यम से इन परिस्थितियों को रोचक तरीके से इस कविता में प्रस्तुत किया गया है। कल्पना के सहारे इस बात–चीत का ताना–बाना बुना गया है। 'सामधेनी' (1947) काव्य–संग्रह में संगृहीत इस कविता का लेखन वर्ष 1946 है। 'कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन भी 1946 में ही हुआ था। यह दौर दूसरे विश्वयुद्ध (1939–1945) के वातावरण से घिरा था। दिनकर

---

**कठिन शब्द**

**मनु** – मनुष्य के आदिम पूर्वज, **वैदिक**–पौराणिक मान्यता के अनुसार मनु से ही मानव का जन्म हुआ है, **मनु–पुत्र**– मानव, मनुष्य

'कुरुक्षेत्र' में इस विषय पर विस्तार से विचार कर रहे थे। कई बातों के साथ दिनकर यह भी बता रहे थे कि विज्ञान के आविष्कारों ने युद्ध की विभीषिका को बढ़ाया है। अतः विज्ञान को मनुष्य–विरोधी होने से बचाने की जरूरत है। आज की मानव–सभ्यता औद्योगिक क्रांति के दौर को पार कर शक्ति–सम्पन्न हो गयी है। इसकी तुलना में पहले का मानव चाँद–सितारों के बारे में कल्पना के सहारे सोचता था।

दिनकर कहते हैं कि रात में आकाश में चाँद निकला हुआ था। वह मुझसे बातें करने लगा कि आदमी विचित्र किस्म का जीव है। उसकी विचित्रता का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि वह अपनी तरक्की के लिए न जाने क्या–क्या करता है? इस प्रयास में वह अनायास अपने लिए उलझनें पैदा करता जाता है। तरक्की की इच्छा के क्रम में जब उसकी उलझनें बहुत बढ़ जाती हैं, तब वह बेचैन रहने लगता है। उसकी नींद उड़ जाती है।

चाँद कवि को संबोधित करके कहता है कि क्या तू जानता है कि मैं कितना पुराना हूँ? मैं तुम्हारी मानव जाति से बहुत पहले से मौजूद हूँ। मुझे तुम्हारी उत्पत्ति और विकास का पूरा क्रम मालूम है। मैंने तुम्हारे आदिम पूर्वज मनु को जन्म लेते और मरते हुए देखा है। मतलब यह कि मानव जाति की उत्पत्ति मेरी आँखों के सामने की घटना है। मनुष्य विकसित होता गया और धीरे–धीरे उसमें संवेदनाएँ भी महत्त्वपूर्ण होती गयीं। भावनाओं के ज्वार में मनुष्य को मैंने तुम्हारी तरह कवि बनते भी देखा है। ऐसा मैंने लाखों बार देखा है। मुझे कई बार लगा कि तुम्हारी तरह जो लोग कवि होते हैं, वे प्रायः पागल होते हैं। उन पागलों को मैंने चाँदनी रातों में और भी उन्मादित होते देखा है। मुझे यही लगा कि ये कवि चाँदनी में बैठकर अपने सपनों को हकीकत में बदलने की कल्पना करते हैं, मगर यह सब मानसिक विक्षोभ से ज्यादा कुछ नहीं है। मनुष्य के सपने पानी के बुलबुले की तरह बनते और बिगड़ते हैं। लेकिन आदमी सपने देखना छोड़ता नहीं है। वह इन सपनों से ही खेलता रहता है और कवि के रूप में अपनी वाणी को कविता में ढाल देता है।

चाँद की इन बातों को सुनकर कवि ने कोई जवाब नहीं दिया। मगर कवि को ऐसा लगा कि उसके मन में बैठी हुई कविता ने अपनी शैली में जवाब दिया है। चाँद को सम्बोधित करते हुए कवि की रागिनी बोल उठी कि ऐ चाँद! तुम मुझे ठीक से नहीं जानते हो! आज का मनुष्य जिन सपनों को देखता है वे पानी के बुलबुले नहीं हैं। इनमें पानी भी है और आग भी! आज का कवि केवल सपनों में नहीं जीता है, बल्कि वह अपने सपनों को आग में गलाकर लोहे की तरह ढाल लेता है। लोहे से बनी उस नींव पर वह नए घर की फौलादी दीवार उठाता है। अब वह मनु की तरह आदिम स्थिति में नहीं है, बल्कि विकास करता हुआ बहुत आगे आ चुका है। वह मनु से मानव हो चुका है। अब उसकी कल्पना बोलने लगी है। उसकी बोलती हुई जीभ में धार आ गयी है। अब उसके पास केवल विचारों के ही बाण नहीं हैं, बल्कि उसके सपनों के हाथों में तलवार आ गयी है। कवि चाँद को आगाह करता है कि जाकर स्वर्ग के सम्राट से कह दो कि हम मनुष्य लगातार आगे बढ़ रहे हैं। नित नए सपने देखनेवाले इन मनुष्यों की नीयत ठीक नहीं है। ये आपके स्वर्ग पर धावा बोलना चाहते हैं। चाहे जैसे हो, इन्हें रोकिए!

**काव्य सौष्ठव**

- विज्ञान के विकास ने विध्वंस की भी क्षमता का विकास किया है।
- आज का मनुष्य केवल कल्पना करके ठहर नहीं जा रहा, बल्कि अपनी कल्पना के आलंबन चाँद पर कदम भी रख चुका है।
- मानव सभ्यता का यह बेलगाम विकास प्रकृति के लिए खतरनाक है।
- 23 मात्राओं की पंक्तियों से इस कविता का निर्माण हुआ है।

**विशेष**

नया मनुष्य प्रकृति में विनाशकारी हस्तक्षेप भी कर रहा है।

## दो

**शक्ति और क्षमा**

क्षमा, दया, तप, त्याग, मनोबल
सबका लिया सहारा
पर नर–व्याघ्र सुयोधन तुमसे
कहो, कहाँ, कब हारा?

क्षमाशील हो रिपु–समक्ष
तुम हुये विनत जितना ही
दुष्ट कौरवों ने तुमको
कायर समझा उतना ही।

अत्याचार सहन करने का
कुफल यही होता है
पौरुष का आतंक मनुज
कोमल होकर खोता है।

क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल हो
उसको क्या, जो दंतहीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो?

तीन दिवस तक पंथ माँगते
रघुपति सिन्धु–किनारे,
बैठे पढ़ते रहे छन्द

अनुनय के प्यारे–प्यारे।

उत्तर में जब एक नाद भी
उठा नहीं सागर से,
उठी अधीर धधक पौरुष की
आग राम के शर से।

सिन्धु देह धर 'त्राहि–त्राहि'
करता आ गिरा शरण में,
चरण पूज, दासता ग्रहण की
बँधा मूढ़ बन्धन में।

सच पूछो, तो शर में ही
बसती है दीप्ति विनय की,
सन्धि–वचन सम्पूज्य उसी का,
जिसमें शक्ति विजय की।

सहनशीलता, क्षमा, दया को
तभी पूजता जग है,
बल का दर्प चमकता उसके
पीछे जब जगमग है।क

'कुरूक्षेत्र' से (1946)

**कठिन शब्द**

**नर–व्याघ्र**– जो मनुष्य होते हुए भी बाघ की तरह हिंसक प्रवृत्ति का हो, **सुयोधन**– दुर्योधन, **क्षमाशील**– माफ करने की प्रवृत्ति रखनेवाला, **रिपु–समक्ष**–दुश्मन के सामने, **विनत**–विनम्र, **पौरुष का आतंक** – अपने बल का प्रभाव, **भुजंग**– साँप, **गरल** – जहर, **नाद**– आवाज, **शर**– तीर, वाण, **त्राहि–त्राहि**–रक्षा की भीख माँगना, **दीप्ति**– चमक, **सन्धि–वचन सम्पूज्य**– समझौते की बात का सम्मान, **बल का दर्प**– शक्ति का आत्मविश्वास

**सन्दर्भ और प्रसंग**

'शक्ति और क्षमा' शीर्षक कविता 'कुरुक्षेत्र' (1946) के 'तृतीय सर्ग' से ली गयी है। 'कुरुक्षेत्र एक खंडकाव्य है। 'शक्ति और क्षमा' शीर्षक सम्पादकों के द्वारा दिया गया है। युद्ध पर विचार करने वाली यह पुस्तक महाभारत से प्रसंग लेकर अपनी बात कहती है। प्रस्तुत कविता में भीष्म और युद्धिष्ठिर के बीच बातचीत है। महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका है, भीष्म पितामह शर–शय्या पर लेट कर सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। युद्धिष्ठिर उनका हाल–चाल पूछने उनके पास प्रतिदिन जाते हैं। पुरानी बातों पर दोनों अपने–अपने विचार रखते हैं। इस कविता में केवल भीष्म के कथन हैं।

**व्याख्या**

भीष्म पितामह युद्धिष्ठिर को समझाते हुए कह रहे हैं कि तुम अपने को युद्ध के लिए दोषी मत मानो! तुमने तो हर तरह से कोशिश की थी कि युद्ध न होने पाए। इसके लिए तुम दुर्योधन के आगे झुके भी थे। तुम समझौते को भी तैयार थे, मगर कौरव–पक्ष तुम्हारी बातों को सुनना कहाँ चाहता था! तुम्हारी विनम्रता को उन्होंने दुर्बलता समझा था! इसलिए तुम्हें ग्लानि करने की कोई जरूरत नहीं है।

भीष्म कहते हैं कि हे युद्धिष्ठिर! क्षमा, दया, तप, त्याग और मनोबल – जैसे सात्विक साधनों का तुमने उपयोग किया! इन सबके सहारे तुमने दुर्योधन के मन को बदलने का प्रयास किया, किन्तु यह बताओ कि दुर्योधन तुमसे कहीं भी और कभी भी मेल–जोल को तैयार हुआ? वह तो मनुष्य होते हुए भी बाघ की तरह हिंसक है।

क्षमाशील बनकर शत्रु के सामने तुम जितने ही विनम्र होते गए उन दुष्ट कौरवों ने तुम्हें उतना ही कायर समझा। वे तुम्हारी क्षमाशीलता का सम्मान न कर सके! देखो युद्धिष्ठिर, अत्याचार को लगातार सहते जाने का दुष्परिणाम यही निकलता है कि तुम बलवान होते हुए भी बलहीन समझ लिए जाते हो! तुम्हारी कोमलता को तुम्हारी कमजोरी मान लिया जाता है।

भीष्म अगली पंक्तियों में साँप का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि जिस साँप के पास जहर हो वह कहे कि मैंने क्षमा कर दिया, तो यह बात शोभती है। जिस साँप के पास न तो नुकीले दाँत हैं, न जहर है, जो विनम्र और सरल है – वह भला किसी को क्या माफी देगा? इसलिए माफी भी उसी की महत्त्वपूर्ण होती है, जिसके पास ताकत हो!

भीष्म फिर उदाहरण देते है कि राम तीन दिनों तक समुद्र से रास्ता माँगते रहे। वे समुद्र से प्रार्थना करते रहे कि लंका तक जाने का रास्ता मुझे दीजिए। वे निवेदन की सुंदर–सुंदर पंक्तियों के सहारे अपनी बात कहते रहे, मगर समुद्र पर कोई असर नहीं पड़ा। उसकी तरफ से कोई जवाब नहीं आया। अंततः राम का धैर्य जवाब दे गया और वे क्रोधित हो गए। मानो उनके पौरुष की आग उनके तीर के माध्यम से प्रकट हुई। विध्वंस की आशंका प्रकट होते ही समुद्र देह धारण करके राम के चरणों में आ गिरा। उसने अपनी रक्षा की भीख माँगी। उसने राम के चरणों की वंदना की और उनकी अधीनता स्वीकार करने की घोषणा की। वह जड़–बुद्धि समुद्र बल के आगे भयभीत हुआ और दास्ता के बंधन में बँध गया।

हे युद्धिष्ठिर! सच तो यही है कि ताकत होने पर ही विनम्रता शोभा देती है। तीर की ताकत में ही विनय की चमक बसती है। समझौते का प्रस्ताव तभी माना जाता है जब विजय की शक्ति भी आपके पास हो! सहनशीलता, क्षमा और दया को यह संसार तभी सम्मान देता है जब शक्ति की चमक उसके पीछे मौजूद होती है!

**काव्य सौष्ठव**

- युद्धोन्माद के माहौल में शक्तिहीनता काम नहीं आती है।
- युद्ध–प्रियता प्रतिपक्ष की विनम्रता का सम्मान नहीं करती है।
- शांति बनाए रखने के लिए शक्ति–संतुलन आवश्यक है।
- यह कविता अवांतर से यह भी सन्देश देती है कि युद्ध अंततः अच्छे परिणाम नहीं देता है।
- 28 मात्राओं की पंक्तियों से इस कविता का निर्माण हुआ है। 16 और 12 मात्रा पर यति है। अंत में दीर्घ है।

**विशेष**

युद्ध के माहौल में वीरता आवश्यक होती है। ऐसे माहौल में शक्तिहीन को अपमानित होना पड़ता है। क्षमा की नीति भी तभी कारगर होती है, जब क्षमा करनेवाला शक्तिशाली हो।

## तीन

**हिमालय**

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार, दिव्य, गौरव विराट् !
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल!
मेरी जननी के हिम–किरीट!
मेरे भारत के दिव्य भाल!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

युग–युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त,
युग–युग गर्वोन्नत, नित महानय
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का वितान?

कैसी अखंड यह चिर–समाधि?
यतिवर! कैसा यह अमर ध्यान?
तू महाशून्य में खोज रहा?
किस जटिल समस्या का निदान?
उलझन का कैसा विषम जाल?
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

ओ मौन तपस्या–लीन यती!
पल भर को तो कर दृगुन्मेष!
रे! ज्वालाओं से दग्ध विकल,
है तड़प रहा पद पर स्वदेश!

सुख–सिंधु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा–यमुना की अमिय–धारय
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार।

जिसके द्वारों पर खड़ा क्रान्त
सीमापति! तू ने की पुकार –
'पद–दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार।'

उस पुण्यभूमि पर आज तपी,
रे! आन पड़ा संकट करालय
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,
डस रहे चतुर्दिक् विविध व्याल।
मेरे नगपति! मेरे विशाल!
कितनी मणियाँ लुट गयीं, मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष!
तू ध्यान–मग्न ही रहा, इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।

कितनी द्रुपद के बाल खुले,
कितनी कलियों का अंत हुआ?
कह हृदय खोल चित्तौर यहाँ
कितने दिन ज्वाल–वसंत हुआ?

पूछे, सिकताकण से हिमपति,
तेरा वह राजस्थान कहाँ?
वन–वन स्वतंत्रता–दीप लिए
फिरने वाला बलवान कहाँ?

तू पूछ, अवध से राम कहाँ?
वृंदा! बोलो, घनश्याम कहाँ?
ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक?
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ?

पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी,
तू पूछ, कहाँ इसने खोयीं
अपनी अनन्त निधियाँ सारी?

री कपिलवस्तु! कह बुद्धदेव
के वे मंगल उपदेश कहाँ?
तिब्बत, इरान, जापान, चीन
तक गये हुए सन्देश कहाँ?

वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ; लिच्छवी–शान कहाँ?
ओ री उदास गण्डकी! बता,
विद्यापति कवि के गान कहाँ?

तू तरुण देश से पूछ अरे!
गूँजा कैसा यह ध्वंस–राग?

अम्बुधि–अन्तस्तल–बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग?

प्राची के प्रांगण–बीच देख,
जल रहा स्वर्ण–युग–अग्नि ज्वाल,
तू सिंहनाद कर जाग तपी!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

रे! रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर!
पर, फिरा हमें गाण्डीव–गदा,
लौटा दे अर्जुन–भीम वीर।

कह दे शंकर से आज करें,
वे प्रलय–नृत्य फिर एक बारय
सारे भारत में गूँज उठे,
'हर–हर–बम' का फिर महोच्चार।

ले अँगडाई उठ, हिले धरा,
कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैल–राट् हुंकार भरे,
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।

तू मौन त्याग, कर सिंहनाद,
रे तपी! आज तप का न काल,
नवयुग–शंख–ध्वनि जगा रही
तू जाग, जाग, मेरे विशाल!

**(रचनाकाल – 1933, 'हुंकार' से (1938)**

---

कठिन शब्द

**नगपति**– हिमालय, नग (पहाड़), **मेरे विशाल –** कवि अपने देश की विराटता के प्रतीक के रूप में हिमालय को सम्बोधित कर रहा है, **साकार**– विशालता और दिव्यता का मूर्तिमान रूप है हिमालय, **मेरी जननी**– मेरी भारतमाता, मेरी मातृभूमि, **हिम–किरीट**– भारतमाता के सिर पर बर्फ के मुकुट की तरह है हिमालय, **दिव्य भाल –** चमकते हुए ललाट की तरह है हिमालय, **अजेय**– जिसे जीता न जा सके, **निर्बन्ध**– बिना बंधन के, **मुक्त**– जो किसी बंधन में न हो, **निस्सीम व्योम**– सीमाहीन आकाश, **महिमा का वितान**– प्रभा–मंडल का आवरण, **चिर–समाधि** –लगातार ध्यान में रहना, **यतिवर**– संन्यासियों में श्रेष्ठ, **महाशून्य**– विराट आकाश, **तपस्या**–लीन, **यती** – साधना में डूबा हुआ संन्यासी, **दृगुन्मेष**– दृग खोलना, आँखें खोलना, **सुख–सिंधु** – सुख का प्रतीक विशाल सिंधु नदी, **पंचनद–पंजाब की पाँच नदियाँ**– सतलज, झेलम, चनाब, रावी और व्यास, **अमिय–धार**– अमृत की तरह की जलधारा, **पुण्यभूमि** – भारत की पवित्र भूमि, **विगलित**– पिघली हुई, **क्रान्त** –चढ़ा हुआ, **सीमापति**– सीमा का रक्षक, **पद–दलित**– पराजित करना, **तपी**– तपस्वी, **कराल** – भयानक, **सुत**– बच्चे, सन्तान, **चतुर्दिक्** –चारों तरफ, **विविध व्याल –** विभिन्न प्रकार के साँप अर्थात् समस्याएँ, **मणियाँ** – कीमती या मूल्यवान, **वैभव**– ऐश्वर्य, सम्मान, **अशेष**– जो कभी समाप्त न हो, **द्रुपदा**– द्रौपदी, **चित्तौर**– चितौड़, **ज्वाल–वसंत** – जौहर की घटना, **सिकताकण**– बालू के कण, **हिमपति** – हिमालय, **अवध –** राम की अयोध्या, **वृंदा**– कृष्ण का वृंदावन, **घनश्याम**– कृष्ण, **बलधाम**– बलशाली, **निधियाँ** – खजाना, **भग्नावशेष**– टूटे–फूटे अवशेष, **लिच्छवी**–शान – लिच्छवी गणराज्य के गौरव, **गण्डकी**– मिथिला में बहनेवाली एक नदी, **ध्वंस–राग**– विनाश का राग, **अम्बुधि–अन्तस्तल –** समुद्र के भीतर, **प्राची**– पूरब दिशा, **स्वर्ण–युग–अग्नि ज्वाल**– स्वर्णिम युग के आने की चमक दिखाई दे रही है, **सिंहनाद**– सिंह की तरह गर्जना, **प्रलय**–नृत्य– अनियमित चीजों के विध्वंस के लिए नृत्य, **शैल–राट्** – विशाल पर्वत, **कुहा**– कुहासा, धुँधलापन, **प्रमाद**– आलस्य, **नवयुग–शंख–ध्वनि**– नया जमाना मानो शंख की ध्वनि से जगा रहा है।

---

### सन्दर्भ और प्रसंग

'हिमालय' शीर्षक कविता रामधारी सिंह दिनकर के काव्य–संग्रह 'हुंकार' (1938) से ली गयी है। इस कविता में दिनकर ने हिमालय को सम्बोधित करके राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ी कुछ बातों को व्यक्त किया है। कविता की अपील यह है कि भारत आज दुर्दशा को प्राप्त हो गया है, ऐसी स्थिति में देश की गौरवशाली परंपरा को याद करने की जरूरत है। हमारे देशवासियों ने पहले भी विपरीत परिस्थितियों में कड़ा संघर्ष किया है। इस कविता में हिमालय को भारत के गौरव का प्रतीक मानकर आह्वान किया गया है। यह आह्वान प्रत्यक्ष रूप से तो हिमालय से है, मगर आंतरिक अर्थ में देशवासियों से है।

### व्याख्या

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने इस कविता की रचना पराधीन भारत के दौर में की थी। भारतवासियों के मन में आत्म–गौरव का भाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से उन्होंने अपील से भरी हुई इस कविता की रचना की थी। कविता हिमालय को सम्बोधित है। हिमालय को पूरी कविता में भारत के गौरव के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दिनकर कहते हैं कि हे मेरे नगपति! तुम दुनिया भर के पर्वतों में सबसे ऊँचे हो! तुम विशाल हो! विराटता और दिव्यता के तुम साकार रूप हो! तुम हमारे देश के लिए विराट गौरव हो!

आगे की पंक्तियों में दिनकर ने हिमालय की विशिष्टताओं को बताने के लिए कई तरह की भावनात्मक कल्पना का उपयोग किया है। ऐसे बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से वे राष्ट्रीयता की भावना को मजबूती प्रदान करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि हे हिमालय! तुम पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल हो अर्थात् पौरुष के समग्र रूप की कल्पना यदि की जाए तो वह तुम्हारी तरह का ही होगा! तुम मेरी भारतमाता के मस्तक पर बर्फ के मुकुट की तरह सुशोभित हो! तुम मेरे देश के दिव्य ललाट की तरह मालूम पड़ते हो!

तुम युगों–युगों से अपराजित हो, बन्धनहीन हो, मुक्त हो और मुक्ति के प्रतीक भी हो, तुम युगों–युगों से गौरव के साथ खड़े हो, तुम महानता के शाश्वत रूप हो! आज भी तुम इस सीमाहीन आकाश में अपनी महिमा का आवरण तानते जा रहे हो! तुमसे मेरी यहीं असहमति है। दिनकर इसके बाद हिमालय से जो बातें कह रहे हैं उनका सारांश यही है कि भारत की आज की अवस्था के अनुसार तुम्हें कुछ कदम उठाने की जरूरत है। ऐसा कहकर दिनकर इस कविता में हिमालय को भारत की विशाल जनता का प्रतिनिधि बना देते हैं।

वे कहते हैं कि भारत आज पराधीन है, मगर तुमने तो अखंड समाधि ले रखी है। यह चिर–समाधि किस लिए? हे यतिवर! तुम्हारा ध्यान तो टूट ही नहीं रहा है, यह अमर ध्यान किस लिए? ऐसा लगता है तुम आज की समस्याओं का समाधान सिर उठाकर आकाश के महाशून्य में तलाश रहे हो! मगर समस्या तो तुम्हारे पदतल में फैली भारत–भूमि पर है। इस भारत–भूमि की समस्याओं से भी ज्यादा जटिल किसी समस्या का समाधान तुम महाशून्य में खोज रहे हो क्या? मगर ऐसी स्थिति दिखाई तो नहीं देती। निश्चित रूप से समस्या इस धरती पर है, आकाश में नहीं। तुम्हें देखकर लगता है कि तुम किसी गहरी उलझन में फँसे हो!

तुम मौन रहकर तपस्या में लीन रहनेवाले सन्यासी की तरह मालूम पड़ते हो। मेरा निवेदन है कि आज तुम्हें पल भर के लिए ही सही, मगर अपनी आँखें खोल देनी चाहिए। तब तुम देख पाओगे कि तुम्हारे कदमों पर पड़ा यह महान देश किन–किन मुसीबतों से ग्रस्त होकर तड़प रहा है।

तुमने इस देश को बहुत कुछ दिया है। सिंधु जैसी विशाल नदी से भारत की भूमि को सिंचित किया है। पंजाब की पाँचों नदियाँ (सतलज, झेलम, चनाब, रावी और व्यास), ब्रह्मपुत्र, गंगा–यमुना आदि की अमृतमय जलधारा को तुमने भारत को ऐसे प्रदान किया है मानो तुम्हारी करुणा पिघल

कर भारत को आशीष दे रही है। तुम युगों–युगों से भारत की सीमा पर सीमापति की तरह खड़े हो। जब भी किसी ने सीमा को पार कर आतंकित करने की कोशिश की, तब तुमने गर्जना की कि पहले मुझसे टकराओ तब इस पवित्र भूमि में प्रवेश करो!

हे तपस्वी! उसी पुण्य–भूमि पर आज भयानक संकट आ खड़ा हुआ है। तुम्हारी संतानें व्याकुल होकर तड़प रही हैं। उन्हें चारों तरफ से सर्प–रूपी अनेक कठिनाइयाँ डँस रही हैं। हमारे देश की अकूत संपत्ति लूट कर विदेश भेज दी गयी। हमारा वैभव कभी समाप्त होनेवाला नहीं था, मगर उसे भी लूट लिया गया। तुम इन सब बातों से बेखबर होकर ध्यान में लीन रहे और हमारा प्यारा देश वीरान कर दिया गया।

कितनी समस्याएँ गिनवाऊँ? अब तक न जाने स्त्री पर अत्याचार की कितनी घटनाएँ घटित हो गयीं। महाभारत में तो एक द्रौपदी के बाल खुले थे, आज न जाने ऐसी कितनी वारदातें हो चुकी हैं और हो रही हैं। न जाने कितने बच्चे–बच्चियों को अत्याचार की बलिवेदी पर मौत मिल चुकी है। चितौड़ से पूछ लो कि उसके जौहर की घटनाएँ अब हर जगह घटित हो रही हैं। हे हिमपति! मेरी बातों पर विश्वास न हो तो, बालू के कणों से बनी उस विराट भूमि से पूछो कि तुम्हारा वह गौरवशाली राजस्थान अब किस हालत में है? उसी राजस्थान के उदयपुर में महाराणा प्रताप हुए थे, जिन्होंने जंगल में जीवन बिताना मंजूर किया मगर अपनी स्वतंत्रता के दीपक को बुझने नहीं दिया! जरा पूछना ऐसे बलवान अब कहाँ हैं?

तुम दूसरी जगहों का हाल–चाल भी पूछ सकते हो! कोई फर्क नहीं मिलेगा। सबकी दुर्दशा समान है। तुम अयोध्या से पूछो कि तुम्हारे राम कहाँ चले गए? वृन्दावन से पूछो कि कृष्ण कहाँ चले गए? हे मगध! मेरे प्रियदर्शी अशोक और महान सम्राट चन्द्रगुप्त कहाँ चले गए? क्या इस गौरवशाली अतीत की कोई निशानी आज मौजूद है? नहीं। आज केवल हताशा है।

तुम्हारे पैरों के नजदीक मिथिला की भूमि है। आज वह सुकुमारिणी एक भिखारिणी की तरह लग रही है। उसका हाल–चाल पूछो कि उसने अपनी अनंत निधियाँ कहाँ खो दी हैं? जवाब तो सबका यही है कि इस दरिद्रता का कारण अंग्रेजों का साम्राज्य है। पूरा भारत हिंसा और दमन से पटा हुआ है। हे कपिलवस्तु! तुम्हीं बताओ कि गौतम बुद्ध के मंगलमय उपदेश आज कहाँ चले गए? एक समय था कि उनके उपदेश तिब्बत, ईरान, जापान, चीन इत्यादि देशों तक प्रसारित हो गए थे। भारत से चले हुए ये उपदेश आज भारत में ही सुनाई नहीं पड़ रहे हैं। बुद्ध ने शांति के उपदेश दिए थे, मगर आज भारत में ही उसकी कमी हो गयी है। चारों तरफ अशांति का साम्राज्य फैला हुआ है। एक जमाना था कि वैशाली में लिच्छवियों का लोकतान्त्रिक गणराज्य था। मगर आज सब धूल–धूसरित हो चुका है। अब तो हमारा पुराना साहित्य भी देखने–सुनने को नहीं मिलता है। जिस गण्डकी नदी के किनारे विद्यापति के गीतों की धूम मची रहती थी, वहाँ आज उदासी छायी हुई है।

यह ठीक है कि तुम तक ये बातें अभी नहीं पहुँची हैं। मगर यह देश तरुणाई की अँगड़ाई ले रहा है। इस प्राचीन देश के भीतर से नई चेतना जन्म ले रही है। इस तरुण देश से तुम संवाद स्थापित करो! इनकी बातें सुनो कि ये तुम से क्या चाहते हैं। नई चेतना से युक्त इस देश से पूछो कि विध्वंस की यह कैसी ध्वनि सुनाई पड़ रही है? ऐसा लगता है कि समुद्र के भीतर कोई आग सुलग रही है। लगता है कि पूरा देश भीतर–भीतर क्रांति की तैयारी कर रहा है। पूरब दिशा में निकलता हुआ सूरज मानो स्वर्ण–युग की अग्नि लेकर प्रज्ज्वलित हो रहा है। ऐसे समय में हे मेरे नगपति! तुम अपनी तपस्या छोड़कर जाग जाओ! तुम अपने विराट रूप के साथ सिंहनाद करो! तुमसे अनुरोध है कि आज युद्धिष्ठिर को स्वर्गारोहण करने दो, उन्हें मत रोको! आज उनकी जरूरत नहीं है। आज हमें अर्जुन और भीम की जरूरत है। स्वर्गारोहण की घटना के क्रम में अर्जुन और भीम अपने गांडीव और गदा के साथ तुम्हारी खाइयों में गिर गए थे। आज उन्हें लौटा दो! अर्जुन को गांडीव के साथ और भीम को गदा के साथ! आज की कठिनाइयों से जूझने के लिए अर्जुन–भीम

की जरूरत है, युद्धिष्ठिर की नहीं! तुम्हारे कैलाश पर्वत पर शंकर का वास है। उनसे कहो कि एक बार प्रलय–नृत्य कर दें! जो कुछ बुरा उसका विध्वंस हो जाए और एक बार फिर से पूरे भारत में 'हर–हर–बम' का जयघोष सुनाई पड़ जाए!

अंतिम बात यह कि तुम ध्यान छोड़ो! एक बार अँगड़ाई लो! तुम्हारी हल्की अँगड़ाई से भी यह पूरी धरती हिल जाएगी! आज तक तुम्हारी आवाज किसी ने नहीं सुनी, हमारा अनुरोध है कि अपने विराट स्वर से अनुगूँज पैदा कर दो! हे पर्वतेश्वर! तुम्हारे हुंकार से धुंधलका फट जाएगा और प्रमाद दूर हो जाएगा! तुम्हारी एक छोटी–सी कोशिश भारत में नई चेतना का संचार कर देगी और विरोधियों के हौसले पस्त हो जाएँगे! तुम अपने मौन को त्याग दो! सिंहनाद करो! हे तपस्वी! आज तपस्या करने का समय नहीं है। नए युग की शंख–ध्वनि जगा रही है। हे मेरे विशाल! तुम जाग जाओ!

**काव्य सौष्ठव**

- हिमालय को भारत की विराटता और वीरता का प्रतीक बताया गया है।
- हिमालय को सम्बोधित यह कविता भारत के आख्यान और इतिहास से गर्व के प्रसंगों को प्रस्तुत कर रही है।
- स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में लिखी गई यह कविता देशवासियों से पुनर्जागरण की अपील करती है।
- इस कविता का निर्माण 16 मात्राओं की पंक्तियों से हुआ है।

**विशेष**

स्वतंत्रता आन्दोलन के समय केवल अहिंसा और सत्याग्रह से ही काम नहीं लिया गया था। ऐसे कई आन्दोलन हुए थे जहाँ हिंसात्मक संघर्ष का सहारा लिया गया था। क्रांतिकारी विचारों में विश्वास रखनेवाले आन्दोलनकारियों के प्रयासों का अपना महत्त्व है। यह कविता इसी प्रकार के संघर्षों का पक्ष ले रही है।

## चार

**भगवान के डाकिए**

पक्षी और बादल,

ये भगवान के डाकिए हैं,

जो एक महादेश से

दूसरे महादेश को जाते हैं।

हम तो समझ नहीं पाते हैं

मगर उनकी लाई चिट्ठियाँ

पेड़, पौधे, पानी और पहाड़

बाँचते हैं।

हम तो केवल यह आँकते हैं
कि एक देश की धरती
दूसरे देश को सुगंध भेजती है।
और वह सौरभ हवा में तैरते हुए
पक्षियों की पाँखों पर तिरता है।
और एक देश का भाप
दूसरे देश में पानी
बनकर गिरता है।

**('हारे को हरिनाम'(1970)**

**सन्दर्भ और प्रसंग**

देश की राजनीतिक सीमाओं से परे जाकर प्रकृति की अखंडता को समझने की एक कोशिश इस कविता में की गई है।

**व्याख्या**

'भगवान के डाकिए' शीर्षक कविता में रामधारी सिंह दिनकर ने वैश्विक संस्कृति को देश की सीमाओं से परे बताया है। देश की सीमाएँ राजनीतिक होती हैं। मगर यह धरती इन सीमाओं के आधार पर नहीं बनी है। धरती का अपना प्राकृतिक स्वरूप अखंड है। इसके प्रमाण प्रकृति में दिखाई पड़ते हैं।

दिनकर कहते हैं कि पक्षी और बादल भगवान के डाकिए की तरह हैं। ये दोनों मानो भगवान के संदेश लेकर सर्वत्र विचरण करते हैं। वे एक महादेश से दूसरे महादेश में चले जाते हैं। अपने आने–जाने के क्रम में न जाने वे कितनी सारी चीजें स्थानतरित करते रहते हैं। इन पर किसी देश का कानून लागू नहीं हो पाता!

ये दोनों जिस तरह के संदेश लेकर आते हैं, उन्हें हम मनुष्य समझ नहीं पाते। इनकी लायी हुई चिट्ठियों को हम पढ़ नहीं पाते। मगर ऐसा नहीं है कि प्रकृति में कोई ऐसा न हो जो इनकी चिट्ठियों को न पढ़ सके! कवि का ख्याल है कि पेड़, पौधे, पानी और पहाड़ इन चिट्ठियों को पढ़ लेते हैं। उनमें इतनी क्षमता है कि वे पक्षी और बादल के द्वारा लाई गई भगवान की चिट्ठियों को पढ़ सकें!

मगर इन बातों पर प्रायः हम गौर नहीं करते! हम तो केवल यह समझते हैं कि हमारी राजनीतिक सीमाएँ ही सत्य हैं और प्रकृति का अखंड स्वरूप इसके आगे झूठा बना दिया जाता है। हम मनुष्य केवल इतना समझ पाते हैं कि एक देश की धरती से जो सुगंध उठती है, वह दूसरे देश को पहुँच जाती है। यह सुगंध हवा में तैरते हुए पक्षियों के पंखों पर सवार हो जाती है। इसी तरह एक देश से उठी हुई भाप पानी बनकर दूसरे देश में बरस जाती है।

---

**कठिन शब्द**
**बाँचते**–पढ़कर सुनाना, **आँकते**– मूल्यांकन करना

---

मगर प्रकृति का अखंड स्वरूप इससे विराट है। इस स्वरूप को समझने के लिए प्रकृति के अन्य संदेशों को भी समझना होगा।

**काव्य सौष्ठव**

- प्रकृति सबसे बड़ा सत्य है।
- देश की सरहदें मनुष्य की बनाई हुई हैं, जिनमें बँधकर रहने की बेबसी मनुष्य की है प्रकृति की नहीं।
- प्रकृति के संदेशों को समझकर ही इस दुनिया को खुशहाल बनाया जा सकता है।
- यह छंदमुक्त कविता है, हालाँकि कुछ पंक्तियों में तुकबंदी और मात्राओं की समानता भी मौजूद है। फिर भी पूरी कविता में छन्द का अनुशासन नहीं है।

**विशेष**

देश की राजनीतिक सीमाओं से बड़ा सच प्रकृति का अखंड स्वरूप है।

**बोध प्रश्न–1**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।**

1. 'रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' कविता में कवि का क्या सन्देश है?
......................................................................................................................................
......................................................................................................................................
..............................................................................................................................

2. 'शक्ति और क्षमा' कविता में युद्ध का विरोध है या समर्थन?
......................................................................................................................................
......................................................................................................................................
..............................................................................................................................

3. हिमालय' शीर्षक कविता में स्वतंत्रता आन्दोलन के किस रूप पर बात की गयी है?
......................................................................................................................................
......................................................................................................................................
..............................................................................................................................

4. 'भगवान के डाकिए' कविता में किस तरह की वैचारिकी प्रस्तुत की गयी है?
......................................................................................................................................
......................................................................................................................................
..............................................................................................................................

**बोध प्रश्न –2**

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

i. 'रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' शीर्षक कविता किस पुस्तक में है?
क) रेणुका ख) सामधेनी ग) हुंकार घ) कुरुक्षेत्र

ii. शक्ति और क्षमा' किस पुस्तक का काव्यांश है?
क) कुरुक्षेत्र ख) रश्मिरथी ग) उर्वशी घ) परशुराम की प्रतीक्षा

iii. 'शक्ति और क्षमा' शीर्षक कविता में किन दो पात्रों के बीच संवाद हो रहा है ?
क) विदुर–युद्धिष्ठिर ख) भीष्म–युद्धिष्ठिर ग) द्रोणाचार्य–युद्धिष्ठिर
घ) कृपाचार्य–युद्धिष्ठिर

iv. 'मेरी जननी के हिम–किरीट' में 'हिम–किरीट' किसे कहा गया है?
क) कैलाश ख) अर्जुन–भीम ग) चन्द्रगुप्त घ) हिमालय

v. 'हिमालय' कविता में प्रलय–नृत्य करने की अपील किससे की गई है?
क) देशवासी ख) हिमालय ग) शंकर घ) कैलाश

vi. 'हुंकार' काव्य–संग्रह का प्रकाशन कब हुआ था ?
क) 1953 ख) 1938 ग) 1957 घ) 1970

vii. 'हिमालय' कविता में कितनी मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है ?
क) 21 ख) 24 ग) 18 घ) 16

viii. 'रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' कविता में कितनी मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है?
क) 23 ख) 21 ग) 17 घ) 28

ix. दिनकर का जन्म कब हुआ था?
क) 1909 ख) 1910 ग) 1908 घ) 1912

x. दिनकर की मृत्यु कब हुई थी?
क) 1968 ख) 1985 ग) 1964 घ) 1974

xi. दिनकर को किस पुस्तक के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था?
क) कुरुक्षेत्र ख) रश्मिरथी ग) संस्कृति के चार अध्याय घ) उर्वशी

## 15.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

**बोध प्रश्न–1**

1. रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद' कविता में चाँद और कवि की बातचीत दिखाई गयी है। चाँद मनुष्य के पुराने रूपों की चर्चा कर रहा है। मगर कवि बताता है कि आज का मनुष्य अब वैसा नहीं रह गया है। उसके पास विज्ञान की शक्तियाँ आ गयी हैं। इनके सहारे वह अपने जीवन को सुविधाजनक बना रहा है। मगर इसी के साथ वह प्रकृति की बनावट में विध्वंसकारी हस्तक्षेप कर रहा है।
2. 'शक्ति और क्षमा' कविता में युद्ध का समर्थन नहीं है। यह कविता 'कुरुक्षेत्र' पुस्तक का एक अंश है। इस किताब में युद्ध की परिस्थितियों और परिणामों की चर्चा महाभारत की कथा के माध्यम से की गयी है। मगर इस अंश को पढ़ने पर ऐसा लगता है कि दिनकर युद्ध का पक्ष ले रहे हैं। सावधानी से अर्थ लगाने पर हम पाते हैं कि इस कविता में केवल इतना कहा गया है कि युद्ध के माहौल में शक्ति की महत्ता होती है। हमारी क्षमाशीलता का सम्मान भी तभी होता है जब हम ताकतवर होते हैं। इस कविता का मूल सन्देश यही है कि शक्तिशाली होकर क्षमाशील और सहनशील बनना चाहिए, अन्यथा हमारे इस कदम का सम्मान नहीं हो पाता है।
3. 'हिमालय' शीर्षक कविता में भारतीय आख्यान और इतिहास की वीरता से जुड़े प्रसंगों को याद किया गया है। 'हुंकार' (1938) में संगृहीत इस कविता का सन्दर्भ स्वतंत्रता आन्दोलन है। अहिंसा और सत्याग्रह के रास्ते के अलावा क्रांतिकारी मार्ग को अपनाने वाले स्वतंत्रता

सेनानी भी सक्रिय थे। इस धारा का अपना महत्त्व है। भारतीय जनमानस का एक बड़ा हिस्सा इस रास्ते पर चलनेवालों को सम्मान की दृष्टि से देखता था। इन लोगों की शहादत को नायकत्व का दर्जा प्रदान किया जाता था। दिनकर ने इसी धारा की भावनाओं को इस कविता में सांस्कृतिक शब्दावली के द्वारा व्यक्त किया है।

4. 'भगवान के डाकिए' कविता में प्रकृति के अखंड रूप को स्थायी और सत्य माना गया है। देश की बनाई गयी सीमाएँ मनुष्य–निर्मित हैं। इन सबके पीछे राजनीति की भूमिका होती है। ये सरहदें बनती–बिगड़ती रही हैं। मगर प्रकृति की सत्ता हमेशा कायम रही है। पक्षी और बादल के माध्यम से यह बात कही गयी है कि भगवान या प्रकृति की इस सत्ता को पहचानो! देश की सीमाएँ प्रकृति की अखंडता को नहीं बाँध सकती हैं। प्रकृति हर तरह से स्वतंत्र है।

**बोध प्रश्न –2**

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

i. ख
ii. क
iii. ख
iv. घ
v. ग
vi. ख
vii. घ
viii. क
ix. ग
x. घ
xi. घ

## 15.4 उपयोगी पुस्तकें

1. दिनकर रचनावली – सम्पादक –नन्दकिशोर नवल, तरुण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली

2. युगचारण दिनकर – सावित्री सिन्हा, सेतु प्रकाशन, नयी दिल्ली

3. दिनकर – सं.– सावित्री सिन्हा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली

# इकाई 16 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : माखनलाल चतुर्वेदी

**इकाई की रूपरेखा**


16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

16.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

16.4 उपयोगी पुस्तकें


## 16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

माखनलाल चतुर्वेदी की चार कविताओं की विस्तृत व्याख्या समझ सकेंगी/सकेंगे;

- माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं की व्याख्या की दिशाओं को जान सकेंगे/सकेंगी;
- इन कविताओं के माध्यम से माखनलाल चतुर्वेदी की काव्यात्मक विशिष्टताओं को जान सकेंगी/सकेंगे;
- माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य–भाषा को समझने का प्रयास कर सकेंगी/सकेंगे और
- माखनलाल चतुर्वेदी की शब्द–योजना और शब्दावली को जान सकेंगी/सकेंगे।

## 16.1 प्रस्तावना

माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म 4 अप्रैल, 1889 को हुआ था। वे मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के रहनेवाले थे। वे कवि, लेखक और पत्रकार थे। उन्होंने 'प्रभा' और 'कर्मवीर' नामक पत्रों का संपादन किया था। चतुर्वेदी जी राजनीतिक रूप से सक्रिय थे। उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ कई आंदोलनों और कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी की। असहयोग आंदोलन में उन्हें जेल भी हुई। 'हिम किरीटिनी' नामक काव्य–संग्रह के लिए उन्हें उस समय का प्रतिष्ठित 'देव पुरस्कार' प्राप्त हुआ था। बाद में 'हिमतरंगिनी' के लिए उन्हें 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उनकी उपलब्धियों को देखते हुए उन्हें 1963 में भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया।उनकी मृत्यु 30 जनवरी, 1968 को हुई थी।

### काव्य कृतियाँ

हिमकिरीटिनी, हिम तरंगिनी, युग चरण, समर्पण, मरण ज्वार, माता, बीजुरी काजल आँज रही, धूम्र वलय

**गद्य कृतियाँ**

कृष्णार्जुन युद्ध, साहित्य के देवता, समय के पाँव, अमीर इरादे : गरीब इरादे

चयनित कविता

## 16.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

एक

**वरदान या अभिशाप?**

कौन पथ भूले, कि आये !
स्नेह मुझसे दूर रहकर
कौन से वरदान पाये?

यह किरन–वेला मिलन–वेला
बनी अभिशाप होकर,
और जागा जग, सुला
अस्तित्व अपना पाप होकरय
छलक ही उट्ठे, विशाल !
न उर–सदन में तुम समाये।

उठ उसाँसों ने, सजन,
अभिमानिनी बन गीत गाये,
फूल कब के सूख बीते,
शूल थे मैंने बिछाये।
शूल के अमरत्व पर
बलि फूल कर मैंने चढ़ाये,
तब न आये थे मनाये–
कौन पथ भूले, कि आये?

(1919)

**कठिन शब्द**

**किरन–वेला** – सुबह, **उर–सदन** – हृदय–रूपी घर, **उसाँसों**– गंभीर साँस, **अभिमानिनी** – मान–मनौवल करानेवाली, **शूल** – काँटा, **बलि** – न्योछावर करना, अर्पित करना

**सन्दर्भ और प्रसंग**

'वरदान या अभिशाप?' शीर्षक कविता में माखनलाल चतुर्वेदी ने छायावादी रहस्य–भावना के अनुसार प्रणय–भाव को व्यक्त किया है।

**व्याख्या**

माखनलाल चतुर्वेदी ने छायावादी कविताएँ भी लिखी थीं। राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़े रहे कवि ने प्रायः अपने राजनीतिक संघर्षों को कविताओं में जगह दी है। प्रस्तुत कविता में चतुर्वेदी जी ने छायावादी प्रवृत्तियों के अनुकूल प्रणय–भाव को व्यक्त किया है। इसमें मिलन की अपेक्षा विरह को महत्त्व दिया गया है। सामान्य प्रेम के बजाए आध्यात्मिक ढंग के प्रेम–संबंध को रहस्यात्मक तरीके से व्यक्त किया गया है।

हे मेरे स्नेह (प्रेम)! तुम तो मुझसे दूर चले गए थे! आज कौन–सा रास्ता भूल गए हो कि मेरे पास चले आए? मुझसे दूर रहकर तुम्हें कोई फायदा हुआ क्या? क्या कोई वरदान मिल गया?

प्रभात की इन किरणों में तुमसे मिलने की अनुभूति हो रही है। मिलन की यह बेला मानो मेरे लिए शाप बन गयी है क्योंकि संसार इन किरणों के आते ही जाग उठा है। विरह में मुझे मेरे अस्तित्व का एहसास था। वह अस्तित्व मानो खो गया है। तुम किरणों के विशाल पुंज होकर छलक उठे थे। मानो तुम सूरज बनकर आए थे! लेकिन मैं तुम्हें अपने हृदय में समा कर नहीं रख सका।

हे सजन! मेरी थकी हुई गहरी साँसों ने रूठ–रूठकर गीत गाए। तुम्हारी प्रतीक्षा में फूल तो कब के सूख चुके थे, इसलिए काँटों को बिछाने के सिवा मेरे पास कोई दूसरा उपाय नहीं था!

मैं काँटों के अमरत्व को जानता था इसलिए उनपर फूलों की बलि चढ़ा दी। उस समय मैंने तुम्हें मनाकर बुलाने की कोशिश की थी, मगर मनाने पर भी तुम नहीं आए। आज तुम आए हो तो यूँ लगता है कि रास्ता भूल कर आए हो!

**काव्य सौष्ठव**

- छायावादी प्रणय–भावना के अनुसार यह कविता रची गयी है।
- आध्यात्मिक स्पर्श होने के कारण इसमें रहस्यवाद का आंशिक पुट है।
- मिलन की अपेक्षा विरह को प्रधानता दी गयी है।

**विशेष**

रहस्यवादी भावनाओं से ओत–प्रोत इस कविता में प्रणय की अनुभूति को विरह की कसौटी पर खरा बताया गया है।

## दो

एक तुम हो

गगन पर दो सितारे : एक तुम हो,

धरा पर दो चरण हैं : एक तुम हो,

'त्रिवेणी' दो नदी हैं! एक तुम हो,

हिमालय दो शिखर हैं : एक तुम हो,
रहे साक्षी लहरता सिंधु मेरा,
कि भारत हो धरा का बिंदु मेरा ।

कला के जोड़–सी जग–गुत्थियाँ ये,
हृदय के होड़–सी दृढ वृत्तियाँ ये,
तिरंगे की तरंगों पर चढ़ाते,
कि शत–शत ज्वार तेरे पास आते ।

तुझे सौगंध है घनश्याम की आ,
तुझे सौगंध भारत–धाम की आ,
तुझे सौगंध सेवा–ग्राम की आ,
कि आ, आकर उजड़तों को बचा, आ ।

तुम्हारी यातनाएँ और अणिमा,
तुम्हारी कल्पनाएँ और लघिमा,
तुम्हारी गगन–भेदी गूँज, गरिमा,
तुम्हारे बोल ! भू की दिव्य महिमा

तुम्हारी जीभ के पैंरो महावर,
तुम्हारी अस्ति पर दो युग निछावर ।
रहे मन–भेद तेरा और मेरा,
अमर हो देश का कल का सबेरा,
कि वह कश्मीर, वह नेपाल; गोवा;
कि साक्षी वह जवाहर, यह विनोबा,
प्रलय की आह युग है, वाह तुम हो,
जरा–से किंतु लापरवाह तुम हो।

**(खण्डवा–1940)**

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

### सन्दर्भ और प्रसंग

राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन को व्यक्त करने वाली काव्य–धारा के प्रमुख कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने प्रस्तुत कविता में प्रेरक बातें कही हैं। आज़ादी की लड़ाई में अपना सबकुछ न्योछावर कर देनेवाले सेनानियों को प्रेरित करते हुए कवि अनेक उत्साहवर्द्धक बातें कही हैं।

### व्याख्या

'एक तुम हो' शीर्षक कविता में कवि ने स्वतंत्रता सेनानियों को महत्त्वपूर्ण बताते हुए कई रूपक गढ़े हैं। उन सेनानियों को सम्बोधित करते हुए वह कहता है कि आकाश में दो सितारे हैं जिनमें से एक तुम हो! अर्थात् तुम आकाश के चमकते सितारे की तरह महत्त्वपूर्ण हो! इसी तरह से कवि ने कुछ उपमाओं का उपयोग किया है, जैसे धरती पर दो चरण हैं, त्रिवेणी में दो नदियाँ हैं, हिमालय में दो शिखर हैं; इन सब में से एक तुम हो!

कवि कहता है कि मेरी इन बातों का गवाह लहराता हुआ समुद्र रहेगा और मेरी कामना है कि मेरा भारत देश धरती का एक महत्त्वपूर्ण बिंदु बनकर रहे!

सांसारिक जटिलताएँ कला की भंगिमाओं की तरह होती हैं और उसकी प्रवृत्तियाँ मन के आवेगों की तरह! मैं चाहता हूँ कि तिरंगे की लहराती तरंगों पर चढ़ते हुए सैंकड़ों ज्वार तुम्हारे पास तक आएँ! इन सब के बावजूद तुम अपने पथ पर अडिग रहो!

आगे की पंक्तियों में कवि ने अपने साथ के स्वतंत्रता सेनानियों को कसम खिलाई है और आह्वान किया है कि तुम मेरी बातों पर गौर करो! वह कहता है कि तुम्हें घनश्याम ('मोहन' नाम होने के कारण गाँधी जी तरफ भी संकेत बनता है) की सौगंध है, तुम्हें धाम की तरह पवित्र भारत–भूमि की सौगंध है, तुम्हें गाँधी द्वारा बनाए गए सेवा–ग्राम की सौगंध है कि आओ और उजड़ते हुए अपने देश को बचाओ!

मैं मानता हूँ कि तुम्हें यातनाएँ दी गई हैं, मगर इन्हें अणुओं की तरह अत्यंत छोटा मान लेना चाहिए! हमारी कल्पनाएँ भले ही छोटी हों, मगर स्वतंत्रता की हमारी आवाज आकाश को चीर देनेवाली है। हमारी–तुम्हारी आवाज में गौरव और गरिमा का भाव है। आजादी के तुम्हारे बोल ही धरती की दिव्य महिमा हैं। वे इतने सुंदर हैं कि मानो तुम्हारी जिह्वा के चरणों का शृंगार महावर लगाकर किया गया हो! तुम्हारी कुर्बानी और महानता पर दो युगों को भी न्योछावर किया जा सकता है।

चतुर्वेदी जी की दूसरी कविताओं में भी आन्दोलन के अपने साथियों के साथ के मतभेदों पर बात की गयी है। यहाँ भी वे कहते हैं कि मेरा और तुम्हारा मन असहमतियों से भरा है। फिर भी हम आन्दोलन के साथी हैं। हम दोनों यही चाहेंगे कि हमारे देश का भविष्य उज्ज्वल हो, कल का सवेरा प्रकाश से भरा हो! कश्मीर, नेपाल, गोवा, नेहरू, विनोबा भावे के नाम लेकर कवि कहना चाहता है कि इन तमाम मुद्दों पर हमारे मतभेद ही नहीं मनभेद भी हो सकते हों; फिर भी देश का उज्ज्वल भविष्य हम सबकी प्राथमिकता है। यह युग तो प्रलय की तकलीफों से भरा है, मगर तुम इन सबसे देश को मुक्त करनेवाले हो! बस तुम्हारी कमी यही है कि तुम थोड़े लापरवाह हो!

---

**कठिन शब्द**

**त्रिवेणी**– इलाहाबाद में तीन नदियों का मिलन–स्थल (गंगा और यमुना के साथ अप्रकट सरस्वती नदी का मिलना), **जग–गुत्थियाँ** – सांसारिक जटिलताएँ, **वृत्तियाँ**– स्वभाव और आदतें, **घनश्याम**– संकेत मोहनदास करमचंद गाँधी की तरफ है, **भारत–धाम**– भारत देश, **सेवा–ग्राम**– वर्धा जिले में स्थित सेवाग्राम आश्रम, इसकी स्थापना महात्मा गाँधी ने की थी, **उजड़तों** – बर्बाद हो रहे लोग, **अणिमा**– सूक्ष्मता, **लघिमा**– लघुता, **गरिमा–** गम्भीरता, **बोल** – वाणी, **महावर** – पैरों में लगाया जानेवाला रंग, आलता, **अस्ति–** मौजूदगी, अस्तित्व, **दो युग**– चार युगों (सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग) में से दो युग, **मन–भेद**– वैचारिक मतभेद, **साक्षी**– गवाह, **जवाहर** – जवाहरलाल नेहरू, **विनोबा**– विनोबा भावे

---

**काव्य सौष्ठव**

- आन्दोलन के साथियों से मतभेद के बावजूद देश–हित में संघर्ष करने का संदेश इस कविता में निहित है।
- 19 मात्राओं की पंक्तियों से यह कविता रची गई है।

**विशेष**

राजनीतिक आन्दोलन के साथियों के बीच मतभेद हो सकते हैं। मगर सबका उद्देश्य एक ही होता है कि देश का हित हो!

## तीन

**बदरिया थम–थमकर झर री !**
बदरिया थम–थमकर झर री !
सागर पर मत भरे अभागन
गागर को भर री !
बदरिया थम–थमकर झर री !

एक–एक, दो–दो बूँदों में
बँधा सिन्धु का मेला,
सहस–सहस बन विहँस उठा है
यह बूँदों का रेला।
तू खोने से नहीं बावरी,
पाने से डर री !
बदरिया थम–थमकर झर री!

जग आये घनश्याम देख तो,
देख गगन पर आगी,
तूने बूँद, नींद खितिहर ने
साथ–साथ ही त्यागी।
रही कजलियों की कोमलता
झंझा को बर री !
**बदरिया थम–थमकर झर री !**

**सन्दर्भ और प्रसंग**

वर्षा ऋतु की कुछ छवियों को इस कविता में पिरोने का प्रयास किया गया है। कवि ने बादलों को संबोधित करते हुए कहना चाहा है कि तुम अभावों का ख्याल करते हुए बरसो! प्रकृतिपरक कलेवर होने के बावजूद इस कविता में प्रगतिशील चेतना समाई हुई है।

**कठिन शब्द**

**बदरिया**– बादल, **अभागन** – प्रेम से दी गयी गाली कि तू भाग्यहीन है, **सहस–सहस** – सहस्र–सहस्र, हजार–हजार, **रेला** – कारवाँ, **बावरी–** प्रेम से दी गयी गाली कि तू पगली है, **खितिहर** – खेतिहर, किसान, **कजलियों** – कजली, काजल,**झंझा**– शोर करती हुई वायु, **बर** – वरण करना

**व्याख्या**

'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध कविवर माखनलाल चतुर्वेदी ने बादलों को संबोधित करते हुए जो बातें इस कविता में कही हैं उनका आशय जन कल्याण से जुड़ता है। प्रकृति से जुड़ी यह कविता अंततः किसानी से जुड़ जाती है। प्रकृति से किसान का संबंध सबसे करीब का होता भी है। उसका पूरा जीवन प्रकृति के रूपों से प्रभावित होता रहता है।

कवि बादलों से बड़े प्रेम से कहता है कि ऐ बदरिया! थम–थमकर बरसो! एक ही बार जोर–शोर से मत बरसो! रुक–रुककर बरसो! ध्यान रखो कि जहाँ पानी की ज्यादा जरूरत है वहाँ बरसो! सागर पर बरसने से क्या फायदा! कवि स्नेहपूर्वक झिड़की देते हुए कहता है कि अरी अभागन! भरे–पूरे समुद्र पर बरस कर क्या करोगी? अच्छा तो यही है कि तुम खाली घड़ों को पानी से भर दो! ऐ बदरिया! रुक–रुककर और समझ–बूझकर बरसो!

तुम्हारी एक–एक बूँद से मिलकर बूँदों का मेला लग जाता है। यूँ लगता है मानो एक–एक, दो–दो बूँदों ने मिलकर समुद्र में बूँदों का मेला सजा दिया है। धीरे–धीरे जमा होकर इन बूँदों ने हजारों की संख्या बना ली है और ऐसा लगता है कि हँसती–मुस्कुराती बूँदों की एक बड़ी भीड़ जमा हो

गई है। कवि आत्मीयता के वशीभूत होकर पुनः बादलों को 'बावरी' कह बैठता है। उसे सलाह देता है कि तेरा निर्माण ही हुआ है बूँदों को खोने के लिए। तू पाने की आशा मत कर! पाने की इच्छा रखना तेरे व्यक्तित्व के लिए ठीक नहीं है! ऐ बदरिया! रुक–रुककर बरस!

तेरी बूँदों ने मानो घनश्याम को जगा दिया है। काले–काले बादल जागकर उड़ते चले जा रहे हैं या बरसकर विलीन होते जा रहे हैं। यह भी अर्थ हो सकता है कि रात का अंधेरा दूर हो गया है और सुबह होनेवाली है या बादलों के हटते ही सूरज चमक उठा। ऐसा लगा कि किसानों ने नींद को त्यागा और तुमने बूँदों को। अब तुम्हारी काजल–जैसी कोमलता बची रह गई है। मेरा विचार है कि अब तुम्हें झंझा का वरण कर लेना चाहिए और उसके साथ दूर तक उड़कर चले जाना चाहिए।

**काव्य सौष्ठव**

- बादलों को संबोधित इस कविता में मूल चिंता किसानी की है।
- यह प्रकृति–चित्रण की नई शैली है, जिसमें प्रकृति के बारे मे बात करते हुए मनुष्य की बेबसी को समाप्त करने की चिंता की जा रही है!
- इस कविता का स्वरूप गीतात्मक है।

**विशेष**

बादलों को संवेदनशीलता के साथ पुकारा जा रहा है कि तुम मनुष्य की लाचारी को समझो! वास्तव में ऐसा कहते हुए कवि का लक्ष्य है कि वह मानवीय पक्षों की महत्ता को स्थापित करे!

## चार

**ऊषा के सँग, पहिन अरुणिमा**

ऊषा के सँग, पहिन अरुणिमा

मेरी सुरत बावली बोली –

उतर न सके प्राण सपनों से,
मुझे एक सपने में ले ले।
मेरा कौन कसाला झेले?
तेरे एक–एक सपने पर
सौ–सौ जग न्यौछावर राजा।
छोड़ा तेरा जगत–बखेड़ा
चल उठ, अब सपनों में खेलें?
मेरा कौन कसाला झेले?
देख, देख, उस ओर 'मित्र'की
इस बाजू पंकज की दूरी,
और देख उसकी किरनों में
यह हँस–हँस जय माला मेले।
मेरा कौन कसाला झेले?
पंकज का हँसना,
मेरा रो देना,
क्या अपराध हुआ यह?
कि मैं जन्म तुझमें ले आया
उपजा नहीं कीच के ढेले।
मेरा कौन कसाला झेले?
तो भी मैं ऊषा के स्वर में
फूल–फूल मुख–पंकज धोकर –
जी, हँस उठी आँसुओं में से
छुपी वेदना में रस घोले।
मेरा कौन कसाला झेले?
कितनी दूर?
कि इतनी दूरी!
ऊगे भले प्रभाकर मेरे,
क्यों ऊगे? जी पहुँच न पाता
यह अभाग अब किससे खेले?

मेरा कौन कसाला झेले?

प्रातः आँसू ढुलकाकर भी
खिली पखुड़ियाँ, पंकज किलके,
मैं भाँवरिया खेल न जानी
अपने साजन से हिल–मिल के।
मेरा कौन कसाला झेले?

दर्पण देखा, यह क्या दीखा?
मेरा चित्र, कि तेरी छाया?
मुसकाहट पर चढ़कर बैरी
रहा बिखेरे चमक के ढेले,
मेरा कौन कसाला झेले?

यह प्रहार? चोखा गठ–बंधन!
चुंबन में यह मीठा दंशन।
'पिये इरादे, खाये संकट'
इतना क्या कम है अपनापन?
बहुत हुआ, ये चिड़ियाँ चहकीं,
ले सपने फूलों में ले ले।
मेरा कौन कसाला झेले?

**रचनाकाल – 1935, 'हिम–तरंगिनी' (1957),**

## सन्दर्भ और प्रसंग

कवि ने प्रकृति की कुछ छवियों को रखते हुए अपनी स्थिति से तुलना की है। प्रकृति में अनेक सुंदर छवियाँ हैं, मगर कवि की वास्तविकता कठिनाइयों से भरी हुई है। यह कविता 'हिम तरंगिणी' मे संगृहीत है।

---

**कठिन शब्द**

**अरुणिमा**– सुबह की लाली, अरुण रंग, **सुरत** – ध्यान, चेतना, **बावली** – पगली, मतवाली, अपने ढंग की, **कसाला**– तीखा, कष्ट से भरा हुआ, कसैला, **मित्र** – सूरज, **पंकज**– कमल का फूल, **मेले**– मिला लेना, पहन लेना, **प्रभाकर** – सूरज, **किलके**– खुशी के कारण स्वतः निकला हुआ स्वर, **भाँवरिया**– फेरा देना, वृत्ताकार घूमना, **चोखा**– पक्का, **दंशन** – चुभन

---

**व्याख्या**

माखनलाल चतुर्वेदी कहते हैं कि ऊषा के साथ अरुणिमा आई है। सुबह हुई है और परिवेश अरुण वर्ण से रंजित है। यह सब देखकर कवि की चेतना का एक पक्ष मानो उद्विग्न हो उठता है। वह कहता है कि मेरे देखे हुए सपनों में से एक भी पूरा न हुआ। मेरे प्राणों को मानो शांति न मिली। मेरा अनुरोध है कि मुझे किसी एक सपने में शामिल कर लिया जाए! संसार मे चारों तरफ सपनों–सी सुंदरता फैली हुई है। लेकिन कवि को निराशा है। वह मान चुका है कि उसके कष्टदायक व्यक्तित्व को भला कौन इतना महत्त्व देगा! पूरी कविता कवि की 'सुरत बावली' के मुँह से कही गई है। कवि की उद्विग्न चेतना ही इस एकालाप को व्यक्त कर रही है।

छायावादी कलेवर में रची गई यह कविता प्रकृति और कवि की चेतना को मिश्रित रूप से व्यक्त कर रही है। कवि की चेतना प्रभात के सौंदर्य को संबोधित करती हुई कहती है कि तुम तो राजा हो! तुम्हारे एक–एक सपने पर सौ–सौ संसारों को न्योछावर किया जा सकता है। तेरा संसार न जाने कितने झंझटों से भरा हुआ है। चलो इन सब बातों को छोड़ देते हैं और सपनों में खेलते हैं। लेकिन मेरा सच मुसीबतों से भरा हुआ है, भला इन मुसीबतों के बीच सपनों के खेल कैसे खेलें!

कवि प्रकृति के एक और दृश्य को रखते हुए अपनी बात की पुष्टि कर रहा है कि सूरज और कमल के फूलों के बीच का संबंध कितना सुंदर है! सूरज और कमल के फूलों के बीच की दूरी कितनी ज्यादा है! मगर सूरज कमल को किरणों के माध्यम से कितने स्नेह से स्पर्श करता है और कमल के फूल मानो सूरज की किरणों को माला बनकर मिलने का उपक्रम कर रहे हैं। इस मनोरम दृश्य के बीच मेरे कसैले पक्ष को भला कौन सह पाएगा!

कमल के फूल हँस रहे हैं और मैं (कवि की 'सुरत बावली') रो रही हूँ। क्या मेरा रोना अपराध है? प्रकृति ने सबको जन्म दिया है, कमल को भी और मुझे भी! कमल का जन्म कीचड़ में हुआ लेकिन मेरा जन्म कीचड़ मे नहीं हुआ है। फिर भी, कवि की दीवानगी ऐसी है कि वह ऊषा के स्वर में स्वर मिलाकर न जाने कितने कोमल चेहरों को आँसुओं से धो चुकी है। वह दीवानगी न जाने कितने रोते हुए लोगों की वेदना में रस घोल चुकी है। इन सबके बावजूद मेरा सारा संदर्भ

कठिनाइयों से भरा हुआ है। इसलिए मेरा साथ निभा पाना आसान नहीं है। न जाने कितनी दूरी उत्पन्न हो चुकी है। मेरे जीवन के सूरज ने मुझसे लंबी दूरी बना ली है। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के झंझावातों ने मेरे जीवन को चुनौतियों से भर दिया है। इसलिए तेज प्रकाश लेकर निकला हुआ सूरज भी मेरे जीवन से दूर मालूम पड़ता है। मेरी अंतरात्मा उस सूरज को स्वाभाविक तरीके से अपना नहीं पाती है, क्योंकि मेरे संघर्षों का कसैलापन मेरा पीछा नहीं छोड़ता है।

प्रकृति को देखिए, वहाँ ऐसे दृश्य देखने को मिल जाते हैं कि ओस–रूपी आँसुओं को ढुलकाकर भी फूलों की पंखुड़ियाँ खिलती हैं और कमल के फूल पुलकित होते हैं। लेकिन कवि की चेतना वेदना से घिरी हुई है। वह चेतना कहती है कि मैं दुःख में ऐसी डूबी कि अपने साजन से हिल–मिलकर खेल खेलना सीख ही न सकी। पूरा जीवन मुसीबतों के जंजाल से घिरा रहा।

मैं आईना देख रही थी। मुझे उलझन हुई कि उसमें मेरा चित्र दिखा या तेरी छाया का आभास हुआ? यूँ लगा कि तुम्हारी मुस्कुराहट पर मेरे चित्र की उदासी ने कुछ चमकीले ढेलों को बिखेर दिया हो! मेरा और तुम्हारा रिश्ता बहुत गहरा है। हमारे और तुम्हारे बीच प्रहार का भी संबंध है और एक मजबूत बंधन भी है। यह सब ठीक उसी तरह से है जैसे चुंबन में मीठी चुभन शामिल हो! कहा जा सकता है कि हमने इरादों को पी लिया और संकटों को खा लिया। अपने इरादों को मानो भूल चुके हैं और संकटों को आत्मसात करके कसैले हो चुके हैं। क्या हमारे–तुम्हारे बीच का इतना अपनापन कम है? चलो, अब यह सब बहुत हो चुका। देखो, फिर से चिड़ियाँ चहकी हैं। उनके सपनों में फिर से फूल खिले हैं।

कवि कहना चाहता है कि प्रकृति की नवीनता एक शाश्वतता है और मनुष्य का जीवन लघुजीवी! प्रकृति नित–नूतन है और मनुष्य पुरानेपन की नियति से जुड़ा हुआ! इसलिए केवल मनुष्य अपने–आप में नवीन–नूतन नहीं है। प्रकृति ही उसका असली उल्लास है!

**काव्य सौष्ठव**

- यह कविता बताती है कि प्रकृति सबसे बड़ा सत्य है।
- मानव जीवन संघर्षों से घिर कर कसैला हो जाता है।
- मानव जीवन मे नूतनता की प्रेरणा प्रकृति से मिलती है।

**विशेष**

कविवर माखनलाल चतुर्वेदी ने इस कविता के माध्यम से यह संदेश दिया है कि प्रकृति अद्‌भुत रूप से सुंदर है और मानव का जीवन संघर्षों से भर कर तीखा हो जाता है। इस संघर्ष को छोड़ा भी नहीं जा सकता। इसे आत्मसात करते हुए प्रकृति की तरफ प्रेरणा के लिए अवश्य जाना चाहिए, अन्यथा जीवन केवल रूखा–सूखा बचकर रह जाएगा!

**बोध प्रश्न–1**

1. 'वरदान या अभिशाप' कविता का मूल भाव क्या है ?

   ......................................................................................................................................

   ......................................................................................................................................

   ......................................................................................................................................

2. 'एक तुम हो' कविता में स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति किस प्रकार का भाव व्यक्त किया गया है?

   ......................................................................................................................................

   ......................................................................................................................................

   ......................................................................................................................................

3. 'बदरिया थम–थमकर झर री' शीर्षक कविता में किस आशय को प्रकट किया गया है?

   ......................................................................................................................................

   ......................................................................................................................................

   ......................................................................................................................................

4. 'ऊषा के सँग, पहिन अरुणिमा' कविता में किस तरह की वैचारिकी प्रस्तुत की गयी है?

   ......................................................................................................................................

   ......................................................................................................................................

   ......................................................................................................................................

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न–**

i. 'ऊषा के सँग, पहिन अरुणिमा' शीर्षक कविता किस पुस्तक में है?
   क) हिम किरीटिनी  ख) हिम तरंगिनी  ग) युगचरण  घ) समर्पण

ii. 'वरदान या अभिशाप' किस पुस्तक में संगृहीत है?
क) हिम किरीटिनी ख) हिम तरंगिनी ग) युगचरण घ) मरण ज्वार

iii. 'वरदान या अभिशाप' शीर्षक कविता में कौन–सा भाव व्यक्त हुआ है ?
क) प्रयोगवादी ख) छायावादी ग) प्रगतिवादी घ) हालावादी

iv. माखनलाल चतुर्वेदी ने निम्नलिखित में से किस पत्रिका का संपादन किया था?
क)रूपाभ ख) मतवाला ग) हंस घ) प्रभा

v. माखनलाल चतुर्वेदी को किस उपनाम से जाना जाता है?
क) महाप्राण ख) संपादकाचार्य ग) एक भारतीय आत्मा घ) राष्ट्रकवि

vi. 'हिम तरंगिनी' काव्य–संग्रह का प्रकाशन कब हुआ था?
क) 1953 ख) 1957 ग) 1955 घ) 1965

vii. 'एक तुम हो' कविता में कितनी मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है ?
क) 21 ख) 24 ग) 16 घ) 19

viii. माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म कब हुआ था?
क) 1880 ख) 1896 ग) 1889 घ) 1898

ix. माखनलाल चतुर्वेदी की मृत्यु कब हुई थी?
क) 1961 ख) 1975 ग) 1964 घ) 1968

x. माखनलाल चतुर्वेदी को किस पुस्तक के लिए 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार मिला था?
क) हिम किरीटिनी ख) हिम तरंगिनी ग) युगचरण घ) समर्पण

## 16.3 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. छायावादी प्रणय–भावना के अनुसार यह कविता रची गयी है। आध्यात्मिक स्पर्श होने के कारण इसमें रहस्यवाद का आंशिक पुट है। मिलन की अपेक्षा विरह को प्रधानता दी गयी है।
2. 'एक तुम हो' शीर्षक कविता में कवि ने स्वतंत्रता सेनानियों को महत्त्वपूर्ण बताते हुए कई रूपक गढ़े हैं। उन सेनानियों को सम्बोधित करते हुए वह कहता है कि आकाश में दो सितारे हैं जिनमें से एक तुम हो! अर्थात् तुम आकाश के चमकते सितारे की तरह महत्त्वपूर्ण हो! इसी तरह से कवि ने कुछ उपमाओं का उपयोग किया है, जैसे धरती पर दो चरण हैं, त्रिवेणी में दो नदियाँ हैं, हिमालय में दो शिखर हैं य इन सब में से एक तुम हो!
3. बदरिया थम–थमकर झर री' शीर्षक कविता में वर्षा ऋतु की कुछ छवियों को पिरोने का प्रयास किया गया है। कवि ने बादलों को संबोधित करते हुए कहना चाहा है कि तुम अभावों का ख्याल करते हुए बरसो! प्रकृतिपरक कलेवर होने के बावजूद इस कविता में प्रगतिशील चेतना समाई हुई है।

4. 'ऊषा के सँग, पहिन अरुणिमा' शीर्षक कविता में कवि कहना चाहता है कि प्रकृति की नवीनता एक शाश्वतता है और मनुष्य का जीवन लघुजीवी! प्रकृति नित–नूतन है और मनुष्य पुरानेपन की नियति से जुड़ा हुआ! इसलिए केवल मनुष्य अपने–आप में नवीन–नूतन नहीं है। प्रकृति ही उसका असली उल्लास है! कविवर माखनलाल चतुर्वेदी ने इस कविता के माध्यम से यह संदेश दिया है कि प्रकृति अद्भुत रूप से सुंदर है और मानव का जीवन संघर्षों से भर कर तीखा हो जाता है। इस संघर्ष को छोड़ा भी नहीं जा सकता। इसे आत्मसात करते हुए प्रकृति की तरफ प्रेरणा के लिए अवश्य जाना चाहिए, अन्यथा जीवन केवल रूखा–सूखा बचकर रह जाएगा!

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–2

i. ख
ii. क
iii. ख
iv. घ
v. ग
vi. ख
vii. घ
viii. ग
ix. क
x. ख

## 16.4 उपयोगी पुस्तकें


1. माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली – सम्पादक – श्रीकांत जोशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

# इकाई 17 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' और भवानी प्रसाद मिश्र

**इकाई की रूपरेखा**


17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 अज्ञेय की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

17.2.1 अज्ञेय का कवि परिचय

17.2.2 'नदी के द्वीप' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.2.3 'यह दीप अकेला' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.2.4 'कलगी बाजरे की' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.2.5 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.3 भवानी प्रसाद मिश्र चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

17.3.1 भवानी प्रसाद मिश्र का कवि परिचय

17.3.2 'गीत फरोश' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.3.3 'सन्नाटा' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.3.4 'फूल कमल के' कविता का वाचन और विश्लेषण

17.3.5 'कहीं नहीं बचे' कविता का वाचन और विश्लेषण


## 17.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई पढ़ने के बाद आप :

- अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे;
- अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में प्रकृति के स्वरूप के बारे में बता सकेंगी/सकेंगे;
- इन कवियों की कविताओं में निहित चिंता और चेतनाओं की चर्चा कर सकेंगी/सकेंगे;
- उल्लिखित कवियों की कविताओं में निहित काव्य सौंदर्य को उजागर कर सकेंगी/सकेंगे;
- दोनों कवियों की भाषिक और शैलीगत विशेषताओं को उद्घाटित कर सकेंगी/सकेंगे और
- अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की जीवन दृष्टि से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे।

## 17.1 प्रस्तावना

अब तक आपने इस खंड की पिछली इकाइयों में प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की कविताओं का रसास्वादन कर लिया होगा। साथ ही, आपने रामधारी सिंह 'दिनकर' और माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक धारा की कविताओं से परिचित हो चुके होंगे। यदि किन्ही कारणों से आपने इन कवियों को अब तक नहीं पढ़ा है तो पहले उन्हें पढ़ लें। फिर, इस इकाई में प्रस्तावित कविताओं को पढ़ते हैं तो हिंदी कविता के विकास को समझने में आपको कठिनाई नहीं होगी।

हिंदी कविता में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ–साथ बड़ा परिवर्तन लक्षित होता है। 'दूसरा सप्तक' तथा 'तीसरा सप्तक' का भी विशेष महत्व रहा। सप्तक परंपरा के कवि विभिन्न विचारधाराओं के हैं। उनकी कविताओं का स्वरूप भाषिक और संवेदना के स्तर पर भी एक दूसरे से भिन्न–भिन्न हैं।आइए, इस इकाई में हम अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की चार–चार कविताओं के आधार पर उनकी संवेदना और शिल्प से परिचित होते हैं।

## 17.2 अज्ञेय की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

अब हम अज्ञेय की चयनित कविताओं का अध्ययन करेंगे।

### 17.2.1 अज्ञेय का कवि परिचय

**सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' :**

सच्चिदानंदहीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (1911–1987) प्रयोगवाद और नयी कविता के श्रेष्ठ कवि हैं। वे एक बहुआयामी रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, आलोचना,जीवनी, यात्रा–वृत्तांत, संस्मरण, डायरी, संपादन, अनुवाद आदि साहित्य की विविध विधाओं में महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की है। यहाँ आपको अज्ञेय के कवि रूप से परिचित कराया जाएगा। कवि के निम्नलिखित कविता संग्रह हैं– 'भग्नदूत' (1933), 'चिंता' (1942), 'इत्यलम' (1946), 'हरी घास पर क्षण भर'(1949), 'बावरा अहेरी' (1954), 'इंद्रधनुष रौंदे हुए ये' (1957), 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959), 'आँगन के पार द्वार'(1961), 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967), 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' (1970), 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (1974), 'महावृक्ष के नीचे' (1977) और 'नदी की बाँक पर छाया' (1981)। कवि की मृत्यु के पश्चात उसकी पंद्रह कविताओं का संग्रह 'मरुथल' भी प्रकाशित हुआ था। अज्ञेय की समस्त कविताएँ 'सदानीरा' के दो खंडों में संग्रहीत हैं। कवि का अंग्रेजी में भी एक कविता संग्रह 'प्रिजन डेज एंड अदर पोएम्स' (1941) उपलब्ध है। आधुनिकता, प्रेम, प्रकृति, अध्यात्म और रहस्य उनकी कविता के विशिष्ट पहलू हैं। प्रेम और प्रकृति से संबंधित कवि की कविताएँ सर्वाधिक सुंदर मानी जाती हैं। उनके संपूर्ण सृजन संसार में आधुनिक संवेदना व्याप्त होने के कारण उसमें आधुनिक मनुष्य की सृजनात्मक प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है। उनकी प्रकृति संबंधी कविताओं में प्राकृतिक चित्रों की विशाल चित्रशाला है, प्रकृति प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। हिंदी साहित्य को आधुनिकता की दिशा में नयी गति और नया मोड़ प्रदान करने में अज्ञेय का स्थायी महत्व बना रहेगा। अज्ञेय साहित्य अकादेमी और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

आइए, अब हम अज्ञेय की चार प्रसिद्ध कविताओं 'नदी के द्वीप', 'यह दीप अकेला', कलगी बाजरे की' और 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' का क्रमशः वाचन करें। प्रत्येक कविता की व्याख्या भी प्रस्तुत की

जा रही है ताकि आप कविता में निहित संवेदना को उद्घाटित कर पाएँगे। साथ ही, कवि की चिंता और चेतना से अवगत होने में आपको सुविधा होगी।

### 17.2.2 'नदी के द्वीप' का वाचन और व्याख्या

(1)

हम नदी के द्वीप हैं

हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाये

वह हमें आकार देती है।

हमारे कोण, गलियाँ, अंतरीप, उभार, सैकत–कूल

सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।

माँ है वह। है, इसी से हम बने हैं।

(2)

किंतु हम हैं द्वीप।

हम धारा नहीं हैं।

स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।

किंतु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।

हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।

पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे।बह जाएँगे।

और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी धारा बन सकते?

रेत बनकर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।

अनुपयोगी ही बनाएँगे।

(3)

द्वीप हैं हम।

यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।

हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में।

वह वृहद् भूखंड से हम को मिलाती है।

और वह भूखंड

अपना पितर है।

(4)

नदी, तुम बहती चलो।

भूखंड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,

माँजती, संस्कार देती चलोः

यदि ऐसा कभी हो

तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वैराचार से –

अतिचार से–

तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे–

यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर

काल– प्रवाहिनी बन जाय

तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर

फिर छनेंगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।

कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।

मातः उसे फिर संस्कार तुम देना ।

————————

**व्याख्याः**

**हम नदी के द्वीप —————— इसी से बने हैं।**

उपर्युक्त पद्यांश प्रयोगवाद के प्रवक्ता सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की 'नदी के द्वीप' शीर्षक कविता से अवतरित है। इस कविता में नदी और द्वीप प्रतीकार्थ में प्रयुक्त हैं। नदी से समाज और द्वीप से व्यक्ति की प्रतीकात्मकता स्पष्ट होती है।

उद्धृत अंश से कवि का आशय यह है कि नदी में जो स्थिति द्वीप की होती है वही समाज में हमारी अर्थात् व्यक्ति की है। नदी का द्वीप नदी से निर्मित है। नदी द्वीप की जननी है। नदी में रहते हुए भी द्वीप नदी से अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। इसी तरह व्यक्ति समाज का अंश होता है, लेकिन उसकी भी अपनी निजी पहचान होती है।

उपर्युक्त पंक्तियों में अपने अस्तित्व एवं रूप तथा आकार में आने का परिचय देते हुए द्वीप कहते है कि हम नदी के द्वीप हैं। हमारा जन्म इस नदी से और नदी में हुआ है। नदी ने ही हमें रूप आकार, पहचान आदि प्रदान किया है। हम इस नदी में रहते हैं। इसलिए, यह नहीं कहते कि नदी हमें अकेला छोड़कर बहती हुई चली जाए। यदि नदी ने हमें छोड़ दिया तो हमारी पहचान मिट जाएगी। हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। जब तक नदी है तब तक हमारा भी अस्तित्व है। इसे हम भली–भाँति समझते हैं। नदी हमारी माँ है। हमें धारण करने वाली अर्थात् धात्री है। इसी ने हमें रूप और आकार प्रदान किया है। जल की धारा में बहने वाले कंकड़, मिट्टी, बालू, पत्थर आदि को एकत्रित करके नदी ने हमारा निर्माण किया है। हमारे कोण,गलियाँ, अंतरीप, उभार, रेतीला किनारा, सारी गोलाइयाँ सभी नदी की देन हैं। कहने का आशय यह है कि नदी समाज का प्रतीक है। द्वीप व्यक्ति का प्रतीक है। समाज में व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व एवं महत्व है पर उसे समाज

से अलग कर नहीं देखा जाना चाहिए। जैसे नदी से द्वीप का निर्माण होता है ठीक वैसे ही व्यक्ति का निर्माण समाज से होता है। व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए समाज के प्रति समर्पित होना चाहिए। आगे आप 'यह दीप अकेला' कविता में भी इस भावबोध से परिचित होंगे।समाज में हमारा अस्तित्व नदी के छोटे–छोटे द्वीपों की भाँति है। नदी और द्वीपों के बीच माता–पुत्र का संबंध जोड़कर कवि ने इसे आत्मीय बना दिया है। द्वीप के लिए नदी की आवश्यकता और उपयोगिता असंदिग्ध है। इसी तरह व्यक्ति के संदर्भ में समाज की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

**किंतु हम हैं द्वीप —————— अनुपयोगी ही बनाएँगे ।**

उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ अज्ञेय की बहुचर्चित कविता 'नदी के द्वीप' से अवतरित हैं। कवि ने मानव के व्यक्तित्व को नदी का द्वीप स्वीकार किया है जबकि नदी समष्टि चेतना का प्रतीक है। द्वीप का व्यक्तित्व धारा से अलग है। नदी का द्वीप नदी में रहते हुए भी अपना व्यक्तित्व बनाए रखता है। वह रेत बनकर नदी को गंदा नहीं करना चाहता। प्रतीकात्मक शैली में कवि ने व्यक्ति को महत्व देते हुए समष्टि चेतना के लिए उसे जरूरी माना है। व्यक्ति की अपनी महत्ता समाज में होती ही है। लेकिन समाज के हित हेतु उसे अपना अलग अस्तित्व बनाए रखना भी आवश्यक है।

द्वीप कहते हैं –हम नदी के द्वीप हैं। हमारा अस्तित्व धारा से अलग है। हम नदी में से उत्पन्न होते हैं। नदी में रहते हैं। फिर भी हमारी अलग सत्ता बनी रहती है। बहती हुई धारा कभी–कभी हमारी सत्ता को पूरी तरह समाप्त भी कर देती है। उस धारा का अस्तित्व भी नदी से है। नदी के बिना धारा की कभी कल्पना नहीं की जा सकती है। धारा पूर्णतः नदी के प्रति समर्पित है। लेकिन हम अपनी व्यक्तित्व चेतना को बनाए रखना चाहते हैं। इन पंक्तियों का आशय है कि व्यक्ति समाज की इकाई है। समाज में रहते हुए भी उसकी व्यक्तिगत सत्ता सुरक्षित रह सकती है। यह ठीक है कि द्वीप नदी का अंग है, नदी के प्रति समर्पित भी। लेकिन प्रवाह में पड़कर अपने अस्तित्व को खोना नहीं चाहता। यदि वह प्रवाह की चपेट में आ जाता है तो उसका अस्तित्व मिट जाएगा। उसके पैर उखड़ जाएँगे। स्थिरता नष्ट हो जाएगी। उस भयंकर प्रवाह में पड़कर वह कहीं का नहीं रह सकेगा। लेकिन इतना निश्चित है कि अपने को पूरी तरह मिटाकर भी वह धारा नहीं बन सकता। वह रेत बन जाएगा। रेत बन जाने से धारा को गंदला ही करेगा। उसे अनुपयोगी बनाएगा। इसीलिए वह अपनी व्यष्टि चेतना को बनाए रखने में विश्वास करता है।

द्वीप अपने रूप और आकार में ही नदी की शोभा बढ़ाता है। उसके समान गतिशील होने का मतलब अपनी पहचान को मिटाना है। अतः हमारा भी कर्तव्य है कि हम समाज और देश की धारा को बिना गंदला किए अपने अस्तित्व को कायम रखते हुए समाज और देश के हित के बारे में सोचें और काम करें।

**द्वीप हैं हम —————— और वह भूखंड अपना पितर है।**

उपर्युक्त अंश हिंदी के बहुआयामी साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के 'हरी घास पर क्षण भर' संग्रह की 'नदी के द्वीप' से उद्धृत है। इस अंश में कवि ने नदी और वृहद् भूखंड के पुत्र के रूप में द्वीप को प्रस्तुत करते हुए प्रतीकात्मक रूप में व्यक्ति का देश और विश्व के साथ आत्मीय संबंध पर प्रकाश डाला है।

समाज में व्यक्ति की स्थिति को कवि ने नदी में द्वीप के प्रतीक से अभिव्यक्त किया है। द्वीप होना अर्थात् स्वतंत्र सत्ता का होना अभिशाप नहीं, बल्कि यह हमारी नियति है। समाज के अंग के रूप में व्यक्ति का महत्व होता ही है। इस परिचय से वह समाज से अलग नहीं होता है। समाज से अलग होने का मतलब है कि बिना पहचान का हो जाना जिसका कोई महत्व नहीं होता है।

कवि का कहना है कि नदी का द्वीप होना अभिशाप नहीं अपितु नियति है। नियति के रूप में यह द्वीप का सौभाग्य है क्योंकि समाज से अलग होकर अस्तित्व महत्वहीन हो जाता है। द्वीपों का मानना है कि यह नदी हमारी माता है और हम उसके पुत्र। नदी ने ही हमें अपनी कोख से जन्म दिया है तथा हम उसकी गोद में उसी तरह बैठे हुए हैं जैसे माँ की गोद में शिशु कहना न होगा कि माता–पुत्र के संबंध की कोई तुलना नहीं है। यह सर्वाधिक आत्मीय और स्नेहपूर्ण होता है। शिशु का लालन–पालन माता करती है और उसे पिता से मिलाती है। वृहद् भूखंड द्वीपों के पिता हैं। ध्यान दिया जाना चाहिए कि द्वीप भूखंड का एक छोटा सा अंश होता है। इसलिए वे वृहद् भूखंड को अपना पिता मानते हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से अलग उसके अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। उसकी गति–प्रकृति समाज द्वारा परिचालित होती है। समाज का वह आजीवन उऋण रहता है। व्यक्ति और समाज का संबंध माता–पुत्र के रिश्ते की तरह काम्य है। 'वृहद् भूखंड' यानी राष्ट्र और विश्व के प्रति भी व्यक्ति की भावना द्वीपों की तरह बनी रहनी चाहिए।

**नदी तुम बहती चलो ———————— फिर संस्कार तुम देना।**

उल्लेख किया जा चुका है कि द्वीपों का निर्माण नदी ने किया है। उन्हें आकार देनेवाली, जन्म देनेवाली, पालन करनेवाली माता नदी ही है। द्वीप नदी में होकर भी नदी नहीं हैं। नदी से अलग हैं। कुछ मायने में विलक्षण भी। नदी के प्रवाह में वे अपने अस्तित्व की रक्षा किए खड़े हैं।

कवि द्वीपों के बहाने नदी यानी समष्टि के प्रति संबोधित करते हुए कहता है– हे नदी ! तुम माँ हो। तुमने ही द्वीपों को जन्म और आकार दिया है। तुम निरंतर बहती रहो। तुम्हारी गति कभी अवरुद्ध न हो। हम जल की धारा नहीं हैं, द्वीप हैं। पृथ्वी से जो अंश हमें भूखंड के रूप में मिला है, उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। इसलिए हम अपनी व्यष्टि चेतना को बनाए रखना चाहते हैं।

नदी अपने पुत्र द्वीपों का निरंतर संस्कार करती आ रही है। यदि कभी ऐसा हो कि प्लावन आ जाए, किसी के स्वेच्छाचार, अत्याचार के चलते अतिवाद का परिणाम उत्पन्न हो जाए तो निर्मल जलधारा वाली नदी को कर्मनाशा और कीर्तिनाशा बनकर विकराल और प्रबल रूप धारण करना पड़े तो द्वीपों को वह स्वीकार होगा। भले ही उस प्लावन से हम रेत बन जाएँ लेकिन हमें पूर्ण विश्वास है कि हम फिर कहीं अपने पैरों पर खड़े हो जाएँगे और बाढ़ का प्रकोप घटते ही फिर कहीं जम जाएँगे। और इसी क्रम में हमें नया रूप मिलेगा। नया व्यक्तित्व साकार हो उठेगा। हमारा आग्रह है कि माता, तुम हमारा पुनः संस्कार करना। व्यष्टि चेतना को बनाए रखने के समर्थन के रूप में यहाँ अस्तित्ववाद की अभिव्यंजना हुई है।

हमारे अस्तित्व के प्रदाता के लिए हमारा संपूर्ण अस्तित्व समर्पित होना चाहिए। ध्यातव्य है कि अस्तित्व समाहित होकर भी समाप्त नहीं हो जाता है। समय और काल के अनंत प्रवाह में नदी के द्वीपों की तरह अस्तित्व भी बनता– बिगड़ता रहता है। यही क्रम अनंत काल से चला आ रहा है। वाह्य अस्तित्व भले ही मिट जाए लेकिन आंतरिक व्यक्तित्व फिर–फिर बनता रहता है। मानव सभ्यता और संस्कृति पुनः–पुनः उसे संस्कार प्रदान करती रहती है। यह जीवन की अनवरत चलने वाली कहानी है।

### 17.2.3 'यह दीप अकेला' कविता का वाचन और विश्लेषण

यह दीप अकेला स्नेहभरा

है गर्वभरा, मदमाता, पर

इसको भी पंक्ति को दे दो।
यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा ?
पनडुब्बा : ये मोती  सच्चे फिर कौन कृती लायेगा ?
यह समिधाः ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।
यह अद्वितीयः यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित :
यह द्वीप, अकेला, स्नेहभरा,
है गर्वभरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।
यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग–संचय,
यह गोरस : जीवन–कामधेनु का अमृत –पूत पय,
यह अंकुर : फोड़ धारा को रवि को ताकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयंभू, ब्रह्मअयुतः
इसको भी शक्ति को दे दो।
यह दीप, अकेला, स्नेहभरा,
है गर्वभरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।
यह वह विश्वास,  नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
यह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा;
कुत्सा, अपमान,अवज्ञा के धुँधुआते कड़वे तम में
यह सदा–द्रवित, चिर–जागरूक, अनुरक्त नेत्र,
उल्लंब– बाहु, यह चिर–अखंड अपनापा।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध,सदा श्रद्धामय
इसको भी भक्ति को दे दो :
यह दीप, अकेला, स्नेहभरा
है गर्वभरा मदामाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

**व्याख्या :**

**यह दीप अकेला स्नेहभरा ————— इसको भी पंक्ति को दे दो।**

ऊपर लिखित अवतरण प्रयोगवाद और नयी कविता के शीर्षस्थ कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की बहुचर्चित कविता यह दीप अकेला' से अवतरित किया गया है। अज्ञेय एक मनोविश्लेषणवादी कवि के रूप में भी जाने जा सकते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में मानव मन की कुंठाओं और अभीप्साओं को भी चित्रित किया है। इस कवितांश में व्यक्ति और समाज के अंतरसंबंध को रेखांकित किया है।

प्रस्तुत अंश में कवि का यह कहना है कि एक अकेला दीपक तेल से भरा हुआ लौ के साथ जलता है और वह जलते हुए मदमाता रहते हुए अपने इर्द–गिर्द के अंधकार को दूर करता है। इसी तरह मनुष्य अकेला होने पर भी उसे पता होता है कि उसमें अंतर्निहित शक्तियाँ मौजूद हैं, सामर्थ्य है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर उसे गर्व होता है। ऐसी स्थिति में वह इठलाता– इतराता रहता है। लेकिन उसके गुणों से दूसरों का उपकार तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि वह अकेला हो। इसलिए कवि कहता है कि यदि अकेले दीपक को पंक्ति में रख दिया जाए तो उसका प्रकाश पंक्ति के दीपकों के प्रकाश के साथ मिलकर व्यापक अंधकार को दूर करने में सफल हो सकता है। मनुष्य की शक्ति में भी बढ़ोतरी तब होती है जब उसे समष्टि के साथ स्थानित कर दिया जाता है। इससे पूरे समाज को लाभ मिलेगा। व्यक्ति अपने गुणों और प्रतिभा का समष्टि के हितों के लिए उपयोग करता है तो स्वतः वह समाज से जुड़ जाता है। उसके जुड़ाव से समाज को लाभ तो मिलता ही है, व्यक्ति का जीवन भी सार्थक समझा जाता है। समाज की प्रगति और उसके विकास में व्यक्ति का यह योगदान बड़े महत्व का समझा जाता है। यह वह व्यक्ति है जो जनकल्याण और देशहित के गीत गाता है। यदि उसे समाज में शामिल नहीं किया गया तो मधुर गीत कौन गाएगा क्योंकि गीत की सार्थकता तभी है जब उसे कोई गानेवाला हो। यह वह गोताखोर है जो हृदयरूपी समुद्र में डुबकी लगाकर कठोर साधना के पश्चात रचना रूपी मोती खोज कर लाता है। यदि उसे समाज से अलग–थलग रखा जाए तो सुंदर सृजन भला कौन करेगा जो अनमोल मोती के रूप में साहित्य और समाज की शोभा का विस्तार करेगा? यह यज्ञ या हवन की लकड़ी (समिधा) के समान है जो स्वयं सुलगकर वातावरण को सुगंधित और पावन बनाती है। इस चेतनारूपी अग्नि को कोई विरला,हठीला ही सुलगा सकता है जिससे समाज का कल्याण होता है। कवि ने दीपक के प्रतीक के लिए जन, पनडुब्बा तथा समिधा का चयन किया है जो व्यक्ति की विशिष्टता के द्योतक हैं तथा सामूहिकता की पूर्णता के लिए सहायक हैं।

**यह मधु है ————— इसे भी पंक्ति को दे दो।**

यह पद्यखंड अज्ञेय की कविता 'यह दीप अकेला' का दूसरा पद है। कवि ने दीपक अर्थात् व्यक्ति के लिए मधु, गोरस और अंकुर के प्रतीकों के माध्यम से अपने विचार को पुष्ट किया है। इन पंक्तियों में कवि ने अन्योक्ति के सहारे व्यक्ति के महत्व को रेखांकित किया है।

यह दीप अर्थात् एकाकी जन (व्यक्ति) जो सदियों से अपने में ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल आदि को संजो कर, तमाम भावों को संजोकर अपने में अनेक मधुर भावों का संचय करता है।यह एकाकी जन का गुण गोरस है जो वास्तव में कामधेनु के समान है। इसमें कामधेनु के समान अमृत प्रदान करने की शक्ति निहित है। यह जीवनरूपी कामधेनु की उस गोरस के समान है जो अमृत प्रदान करता

है। यह एक विशेष अंकुर के समान है जो पृथ्वी के वक्ष स्थल को चीरकर सूर्य की ओर अनिमेष नयनों से निर्भय होकर देखता रहता है।इसमें जीने की अद्‌भुत क्षमता है। प्रबल जिजीविषा तो है ही। यह स्वयं प्रकृति और ब्रह्म स्वरूप है किंतु इसका पूर्ण विकास नहीं हुआ है। एकाकी निर्जन में व्याप्त है। इसे विशिष्ट शक्ति प्रदान करना परम आवश्यक है। अतः इसे भी पंक्ति में रखा जाए ताकि इसमें छिपे समस्त गुण विकसित हो सकें। इससे समाज लाभान्वित होगा।

व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के समरसतापूर्ण सह–अस्तित्व से देश अथवा राष्ट्र का चहुमुखी विकास संभव होता है। इसलिए व्यक्ति रूपी शक्ति के ऊर्जावान कणों को पंक्ति अर्थात् समाज से जोड़ना अति आवश्यक है।

**यह वह विश्वास नहीं —————— इसको भी पंक्ति को दे दो।**

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'यह दीप अकेला' शीर्षक कविता से ली गई हैं। इस कविता के कवि अज्ञेय हैं। इन पंक्तियों में कवि ने दीप को व्यंजित किया है।

यह वह व्यक्ति है जो उपकारी है, स्नेह से भरा है और अपने लघु स्वरूप से भयभीत नहीं है। बावजूद इसके वह अपने व्यक्तित्व को विशालता प्रदान करते हुए अपने सत्कर्मों के प्रति समर्पित होता है। जिस प्रकार दीपक अपने में अग्नि धारण किए हुए होता है और स्वयं को जलाने का दुःख वह अच्छी तरह जानता है। फिर भी वह स्नेह से भरा है और स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाशित करता है। दुनिया के अंधकार को दूर करता है। वह सदैव जागरूक और सावधान रहता है कि सबको समान रूप से समान प्रेम भाव से प्रकाशवान करे। ऐसा मनुष्य जो जिज्ञासु प्रवृत्ति का है, जिसमें स्नेह है और जो ज्ञानवान है, श्रद्धा से परिपूर्ण है वह भी दीप की भाँति होता है। ऐसा व्यक्ति जब समाज से जुड़ता है तो वह समाज को धन्य कर देता है। लघु मानव अपने लघु स्वरूप से घबराता नहीं है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अनुकूल आचरण करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रतिकूलता को अनुकूलता में तब्दील कर देता है।

जिस प्रकार दीपक स्वयं जलकर तकलीफें सहते हुए भी स्नेह से भरपूर होता है और रौशन करता है ठीक उसी तरह मनुष्य ज्ञान का प्रकाश फैलाता रहता है। जब कभी समाज में निंदा, अपमान, घृणा, अनादर, उपेक्षा आदि के कारण अंधकार व्याप्त हो जाता है तो दीप रूपी मनुष्य अपने प्रकाश रूपी ज्ञान से अंधकार रूपी अज्ञानता को दूर करता है। कठिन और प्रतिकूल परिस्थितियों के समक्ष वह घुटने नहीं टेकता बल्कि उसे अनुकूल वातावरण में बदल देता है। विपरीत परिस्थितियों में भी वह करुणामय, द्रवित होकर जागरूकता का परिचय देते हुए सभी को अनुरागभरे नयनों से देखता है। अर्थात् उसके मन में सबके प्रति अनुराग और दया भाव बना रहता है। उसका आत्मविश्वास डिगता नहीं है। स्वयं अपनी पीड़ा का साक्षी बनकर दूसरों के हितार्थ अपनी बाहुएँ फैलाए रहता है। उन हाथों में अपनापा भरा रहता है। वह दूसरों को आत्मीयता से भर देता है। ऐसा मनुष्य श्रद्धावान होता है। अपने समय के अनुकूल कर्म के माध्यम से समाज का उत्थान करता है। ऐसे दीप रूपी व्यक्ति को पंक्तिरूपी समाज के विकास हेतु समर्पित करना श्रेयस्कर है। इससे उसका जीवन सार्थक हो जाएगा। इसीलिए उसे भक्ति को देना राष्ट्र हित के लिए है।

इस कविता में व्यष्टि से समष्टि के मानवीय संबंध को भी कवि ने उजागर किया है। यहाँ लघु मानव की प्रतिष्ठा भी स्थापित है।

आपने ध्यान दिया होगा कि 'यह दीप अकेला' कविता में कवि अज्ञेय ने प्रतीकों के माध्यम से अपने विचार की पुष्टि की है। व्यक्ति और समाज के अन्योनाश्रित संबंध को कविता में महत्व दिया गया है। कवि का मानना है कि व्यष्टि और समष्टि के समन्वय से ही विकास संभव होता है।

इस कविता में लघु मानव की प्रतिष्ठा सफलतापूर्वक की गई है। कविता की भाषा प्रतीकात्मक है। गंभीर विचार को कविता के साँचे में ढालने का सफल प्रयास हुआ है। इसलिए संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों की बहुलता परिलक्षित होती है। अज्ञेय की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचनाओं में से 'यह दीप अकेला' शीर्षक कविता का स्थान उल्लेखनीय है।

### 17.2.4 'कलगी बाजरे की' कविता का वाचन और विश्लेषण

हरी बिछली घास।

डोलती कलगी छरहरी बाजरे की।

अगर मैं तुम को

ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता,

या शरद के भोर की नीहार–न्हायी कूँई

टटकी कली चंपे की

वगैरह, तो

नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है

या कि मेरा प्यार मैला है।

बल्कि केवल यही :

ये उपमान मैले हो गए हैं।

देवता इन प्रतीकों को कर गये हैं कूच।

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

मगर क्या तुम

नहीं पहचान पाओगी :

तुम्हारे रूप के –

तुम हो, निकट हो, इसी जादू के –

निजी किस सहज, गहरे बोध से,

किस प्यार से मैं कह रहा हूँ–

अगर मैं यह कहूँ–
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की?
आज हम शहरातियों को
पालतू मालंच पर सँवरी जूही के फूल से
सृष्टि के विस्तार का–ऐश्वर्य का–
औदार्य का–
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा
एक प्रतीक
बिछली घास है,
या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
डोलती कलगी अकेली बाजरे की।
और सचमुच, इन्हें जब– जब देखता हूँ
यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है–
और मैं एकांत होता हूँ
समर्पित।
शब्द जादू है–
मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं ?

**व्याख्याः**

**हरी बिछली घास ————— मुलम्मा छूट जाता है।**

उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रयोगधर्मी कवि अज्ञेय की 'कलगी बाजरे की' शीर्षक कविता से अवतरित हैं। यह रचना कवि के 'हरी घास पर क्षण भर' कविता संग्रह में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि ने काव्य के क्षेत्र में सर्वथा नए प्रतीकों और उपमानों के संधान और प्रयोग पर बल दिया है।

पुराने और पारंपरिक उपमान अपनी महत्ता और अर्थवत्ता खोने लगते हैं। युग संदर्भ में उनकी व्यापकता भी संकुचित प्रतीत होने लगती है। कवि अपनी प्रेयसी की तुलना पुराने उपमानों के बदले कलगी बाजरे की या हरी बिछली घास से करता है। इससे कवि को अपना प्रेम कहीं अधिक व्यापक प्रतीत होता है।

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि अपनी प्रेमिका की तुलना तारा, कुमुदिनी अथवा चंपे की कली जैसे पुराने उपमानों को छोड़कर चिकनी हरी घास और बाजरे की कली से करता है। उसके अनुसार हरी घास और बाजरा प्रेयसी की सुंदरता के अधिक निकट है। ये दोनों शहरी लोगों के लिए जुही के फुलों से भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकते हैं। कवि इन दोनों की सादगी भरी शोभा से इतना प्रभावित है कि वह इसके माध्यम से सारी सृष्टि को अपने निकट महसूस करता है। वह प्रेमिका को संबोधित करते हुए कहता है कि यदि मैं तुम्हें लालिमा से भरपूर शाम को आकाश में चमकने वाली

अकेली तारिका नहीं कहता अथवा शरद ऋतु के भोर की कुहरे से ढँकी कुमुदिनी नहीं कहता हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं कि मेरे हृदय में प्रेम की गहराई नहीं, भावना या संवेदना से शून्य हूँ। तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम में किसी प्रकार की कोई मलिनता या दुर्भावना नहीं है बल्कि इसका कारण यह है कि सदियों से प्रचलित ये पारंपरिक उपमान बेहद पुराने हो चुके हैं। बासी हो गए हैं। देवता भी इन प्रतीकों को कूच कर चुके हैं। इनकी अंतर्निहित शक्ति फीकी पड़ चुकी है। परिवर्तित समय में इनसे अर्थ की अभिव्यक्ति कमजोर तरीके से अथवा असफल ढंग से ही हो पाती है। ये प्रतीक और उपमान घिस चुके हैं। इनका उपयोग बार–बार होने के कारण ये शक्तिहीन हो चुके हैं। जिस प्रकार बासन को अधिक घिसने से वह पुराना पड़ जाता है, उसकी चमक बेहद फीकी पड़ जाती है, बिना कलई का बर्तन निष्प्रभ हो जाता है ठीक वैसी ही स्थिति पारंपरिक उपमानों की होती है। तारिका का प्रकाश, उजास और उसकी अलौकिकता, कुमुदिनी की निर्मलता, चम्पे की मादकता पुराने, जूठे, बासी और प्रभावहीन हो गए हैं। इसके विपरीत नए उपमानों के प्रयोग हों तो उनमें ताजगी, नवीनता और मौलिकता होंगी। इसलिए प्रयोगधर्मी कवि अपनी कविता में नए नए प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग करता है।

**मगर क्या तुम ————— कलगी, छरहरी बाजरे की ?**

कवि ने अनछुए और सर्वथा नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। पुराने और पारंपरिक उपमानों की तुलना मे कवि द्वारा प्रयुक्त उपमान अधिक अर्थव्यंजक और उद्देश्यधर्मी हैं। हो सकता है कि ये उपमान अपनी नवीनता के कारण थोड़े अटपटे लगें, लेकिन उद्देश्य की सिद्धि में कवि को अचूक प्रतीत होते हैं।

इसलिए कवि अपनी प्रियतमा से कहता है कि क्या इन नए उपमानों के प्रयोग से तुम्हारे रूप सौंदर्य का बखान करूँ तो क्या तुम मेरी भावनाओं को नहीं समझ सकोगी? क्या इनके प्रयोग से तुम अपने आपको समझ नहीं पाओगी? मेरे लिए तो तुम्हारा नैसर्गिक सौंदर्य इन प्रतीकों–उपमानों के अधिक निकट जान पड़ता है। इसलिए इन नवीन और ताजे–टटके उपमानों से तुम्हें उपमित करने में मुझे कुछ अनुचित प्रतीत नहीं होता है। बड़े ही सहज भाव से अपने हृदय की अतल गहराई से तुम्हारे प्रेम से अभिभूत हो अत्यधिक जुड़ाव के साथ यह कह रहा हूँ कि तुम हरी बिछली घास हो अर्थात् जिस प्रकार की फिसलन, चिकनाई और हरियाली हरी घास में होती है, उसी तरह तुम्हारे रूप–लावण्य की सुगढ़ देह का इससे अच्छा उपमान नहीं हो सकता। हवा में डोलती छरहरी, मुलायम, पतली बाजरे की कलगी तुम्हारे अल्हड़पन और मस्ती का परिचायक हो जाता है। कवि का कहना है कि किस भावबोध से ये नए उपमान रचे गए हैं, उन्हें केवल तुम ही समझ सकती हो।

**आज इन शहरातियों को ————— यह समर्पण कुछ नहीं है ?**

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों के माध्यम से कवि अज्ञेय ने नए उपमानों के महत्व और औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि हरी बिछली घास बिल्कुल नया उपमान है। लेकिन यह उपमान नारी की कोमलता, सहजता और ताजगी के अहसास को व्यक्त कर्ता है। इसमें शुष्कता नहीं, अपितु एक आर्द्रता, एक नमी है। साथ ही, सौंदर्य की व्यापकता भी। इन पंक्तियों में कवि घास और बाजरे को शहरी सभ्यता और पूरी सृष्टि से जोड़कर देखता है। शहर में रहने वालों के लिए अपने घरेलू बगीचे पर साज–संवार कर उगाए गए जुही के फूल से उस ऐश्वर्य, सच्चाई, औदार्य और सृष्टि के विस्तार का बोध नहीं हो सकता जो 'हरी बिछली घास' अथवा शरद ऋतु की सांध्यबेला में आकाश की शून्य पीठिका पर लाहलहाते बाजरे की कलगी में है। भाव यह है कि चिकनी घास शहर में रहनेवालों के लिए इस संसार की विशालता, समृद्धि और विस्तार का प्रतीक है। शहर के निवासी के अनुसार जुही के फूल घास और बाजरे की कलगी से अधिक महत्वपूर्ण है। वे इसी से दुनिया की विशालता को समझने की भूल कर बैठते हैं। जबकि हरी घास और बाजरे की कलगी

लोक जीवन और लोक संस्कृति के अंग हैं। इनसे आम तौर पर शहरी जनजीवन दूर रहता है। कवि ने आगे की पंक्तियों में इन दोनों को संपूर्ण सृष्टि से जोड़ने का प्रयास किया है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि जब–जब मैं इन्हें देखता हूँ तो संपूर्ण सृष्टि का विस्तार मानो सघन हो उठता है। विशाल पृथ्वी सिमटी हुई भी प्रतीत होती है। यह इसलिए कि कवि को समूचा संसार उसके आस–पास महसूस होने लगता है। ऐसी स्थिति में वह भाव–विह्वल होकर संपूर्ण सृष्टि के प्रति अपने को समर्पित कर देता है। यह सच है कि शब्द भावों की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम है जो सुनने वाले पर जादू सा असर करता है परंतु मौन की अभिव्यंजना मुखर न होकर भी अधिक गहनता से भावों को संप्रेषित कर देती है। कवि अंतिम पंक्तियों में यह सवाल पूछता है कि क्या उसके एकांत और स्थिर समर्पण का कोई मोल नहीं है ? यह समर्पण प्रेमिका के प्रति हो सकता है तो प्रकृति अथवा सृष्टि के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। कवि की दृष्टि में शब्दों के कृत्रिम जादू से समर्पण कहीं अधिक मूल्यवान है।

कवि अज्ञेय की इस कविता में पारंपरिक प्रतिमानों, उपमानों और प्रतीकों के विरोध के साथ–साथ नए उपमानों के प्रति आग्रह है। नए उपमानों का प्रयोग है। जीवन की एकरसता को त्यागकर उसमें नयापन लाने का प्रयास भी दिखाई पड़ता है। इस कविता में रचना को लोकजीवन से जोड़ने का भी प्रयास परिलक्षित होता है। शाब्दिक चमत्कार से नहीं हृदयगत भावों की अभिव्यंजना ही सर्वश्रेष्ठ होती है। निष्कपट और निश्छल अभिव्यक्ति ही प्रेम के लिए उत्कृष्ट होती है। यह कवि की प्रयोगशील दृष्टि का सुंदर उदाहरण है। इस कविता में कवि की प्रेम चेतना और जीवन दृष्टि का भी काव्यिक समावेश हुआ है।

### 17.2.5 'सम्राज्ञी का नैवेद्य–दान' कविता का वाचन और विश्लेषण

हे महाबुद्ध !

मैं मंदिर में आयी हूँ
रीते हाथ :
फूल मैं ला न सकी।

औरों का संग्रह
तेरे योग्य न होता।

और जो मुझे सुनाती
जीवन के विह्वल सुख–क्षण का गीत –
खोलती रूप जगत के द्वार जहां
तेरी करुणा
बुनती रहती है

भव के सपनों, क्षण के आनंदों के
रह : सूत्र अविराम–
उस भोली मुग्धा को
कँपती
डाली से विलग न सकी।
जो कली खिलेगी जहां, खिली
जो फूल जहां है,
जो भी सुख
जिस भी डाली पर
हुआ पल्लवित, पुलकित,
मैं उसे वहीं पर
अक्षत, अनाघात, अस्पृश्य, अनाविल
हे महाबुद्ध ?
अर्पित करती हूँ तुझे।

वहीं–वहीं प्रत्येक प्याला जीवन का,
वहीं–वहीं नैवेद्य चढ़ा
अपने सुंदर आनंद–निमिष का,
तेरा हो,
हे विगतागत के, वर्तमान के पद्मकोश !
हे महाबुद्ध !

'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' शीर्षक कविता की व्याख्या के पहले आप इस रचना की पृष्ठभूमि को ध्यानपूर्वक पढ़ लें तो कविता का भाव ग्रहण करने में आपको कठिनाई नहीं होगी। आप जानते हैं कि जापान में बौद्ध धर्म के अनुयायी बड़ी संख्या में हैं। जापान की रानी के लिए 'सम्राज्ञी' का प्रयोग हुआ है। उनका नाम कोमियो था। राजधानी नारा में अवस्थित महाबोधि मंदिर में बुद्ध के दर्शन हेतु जाते समय उनके मन में उमड़ने वाले भावों को इस कविता में प्रस्तुत किया गया है। सम्राज्ञी यह तय नहीं कर पाती हैं कि भगवान बुद्ध को भेंट करने के लिए क्या लेकर जाएँ। काफी चिंतन–मनन के उपरांत वह खाली हाथ भगवान बुद्ध के दर्शन हेतु पहुँचती है। इस पृष्ठभूमि में 'साम्राज्ञी का नैवेद्य दान' कविता सितंबर 1957 में रची गयी थी। एक तथ्य यह भी है कि बौद्ध साहित्य में सम्राज्ञी को मियो का नाम विशेष आदर और सम्मान के साथ उल्लेख मिलता है। आइए, अब हम कविता के पदों की क्रमशः व्याख्या करते हैं।

**व्याख्या**

**हे महाबुद्ध ——————— डाली से बिलग न सकी।**

उपर्युक्त कवितांश हिंदी के बहुप्रसिद्ध कवि अज्ञेय की 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' शीर्षक कविता से अवतरित है। भगवान बुद्ध के श्रेष्ठ भक्तों में सम्राज्ञी को मियो का नाम लिया जाता है। इस कविता में सम्राज्ञी के मनोभावों को कवि ने बड़ी शिद्दत के साथ प्रस्तुत किया है।

माना जाता है कि फूलों का सर्वाधिक सौंदर्य होता है जब वे डाल पर हों। वे वहीं अक्षत, अनाघ्रात और अनाविल रूप से पल्लवित रहते हैं। पुलकित रहते हैं। वे वहीं रहकर स्रष्टा के लिए समर्पित रहते हैं। कहा यह भी जाता है कि डाल से फूल तोड़ने से डाल और पेड़ को दुःख होता है, कष्ट होता है। फूल जीवनरहित हो जाते हैं। डाल से फूल तोड़ने का आशय माँ की गोद से शिशु को छीन लेने के समान है। इन्हीं कारणों से सम्राज्ञी कहती हैं – हे महाबुद्ध ! मैं तुम्हारे इस मंदिर में पूजा करने आयी हूँ लेकिन मेरे पास तुम्हें चढ़ाने के लिए औरों की भाँति पुष्पगुच्छ अथवा हार या पूजा की सामग्री नहीं है। मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। मगर मेरे मन में केवल पवित्र भाव है। यही मेरी पूजा की सामग्री है। लोग आपको भेंट स्वरूप पुष्प अर्पित करते हैं। परंतु मुझे ऐसा लगता है कि फूल तो किसी और का संग्रह है। पुनः उसे तोड़ना हिंसा ही है। ऐसे में आपको पुष्प अर्जित करना मुझे ग्लानि होती है। गौरव का भाव नहीं होता है। हे महाबुद्ध ! आप स्वयं बौद्धिक विवेक के प्रतिमान हैं। आप सारभूत करुणा के परम प्रतीक हैं। इसलिए आप ही मेरे मानसिक द्वंद्व को भली–भाँति समझ रहे होंगे कि आखिर मैं खाली हाथ आपके दर्शन करने क्यों आयी।

कविता के अगले अंश में कवि ने सम्राज्ञी की उलझनभरी मनःस्थिति का चित्रण किया है। सम्राज्ञी कहती हैं कि हे महाबुद्ध! आपकी करुणामयी मुस्कान जीवन के विह्वल सुख–क्षणों का संगीत सुनाती है। इससे मेरे जीवन के न जाने कितने रूप सौंदर्य के द्वार उन्मुक्त हो जाते हैं। क्षण के आनंद के जरिए नए सपने जन्म लेते हैं। ये स्वप्न मुझे डाल पर खिले फूलों में दिखाई पड़ते हैं। मैं भला उन भोली–भाली मुग्धता को डाल से कैसे अलग कर सकती हूँ? इसलिए आप मेरे मन की उलझनभरी दशा को समझ सकते हैं। खाली हाथ आपके दर्शन हेतु आ जाने का कारण आप ही समझ सकते हैं।

अवतरित अंश में जीवन सौंदर्य और करुणा का मनोज्ञ चित्रण हुआ है। महादेवी वर्मा के 'क्या पूजन क्या अर्चन रे' जैसी कविताएँ भी इस संदर्भ में पढ़ी जा सकती हैं।

**जो कली खिलेगी —————— हे महाबुद्ध !**

अज्ञेय की 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' कविता के उपर्युक्त अवतरण में बुद्ध के प्रति सम्राज्ञी का अनन्य समर्पण प्रकट होता है। इन पंक्तियों में सम्राज्ञी का निवेदन वर्णित है।

सृष्टि का कल्याण समूचे अस्तित्व को सुरक्षित रखकर ही संभव होता है। समग्र जीवन को महत्व प्रदान करते हुए सम्राज्ञी कहती हैं कि जो कली जहां भी खिली है,जो फूल जहां भी अपनी शोभा और गंध समर्पित कर रहा है अथवा जीवन से जुड़ा जो भी सुख जिस डाल पर पल्लवित और पुलकित है, उन सबको वहीं बस वहीं बिना कोई हानि पहुँचाए, बिना किसी आघात के, बिना किसी स्पर्श के प्रकृत और पवित्रता के साथ मैं आपको समर्पित करती हूँ। ऐसे अपूर्व समर्पण के लिए कवि ने ''अक्षत, अनाघ्रात, अस्पृष्ट, अनाविल' का प्रयोग किया है। हिंसा के वातावरण में इस भाव का औचित्य और प्रासंगिकता स्वयंसिद्ध है। इस संसार में प्रत्येक मनुष्य को जीवन रूपी प्याले में जो भी प्राप्त है, उसे उसी में प्रसन्न होना चाहिए। धैर्य और संतोष को जीवन की पूँजी मानकर आगे बढ़ना चाहिए। सम्राज्ञी ने अपने आराध्य भगवान बुद्ध को 'विगतागत'(जो बीत चुका है और जो आने वाला है) तथा 'वर्तमान के पद्मकोष' के संबोधन से अतीत में ही नहीं, मौजूदा समय में भी बुद्ध के विचारों की प्रासंगिकता को स्पष्ट किया है।

आज के जीवन में भयानक होड़ लगी हुई है। हम अपनी स्वायत्तता को लेकर चिंतित रहते हैं लेकिन दूसरों की भी स्वायत्तता, होती है, इसे भुला बैठते हैं। स्वतंत्रता के संदर्भ में भी हमारा ऐसा ही आचरण रहता है। जीवन की मूलभूत गुणवत्ता और उसके सौंदर्य को बचाए रखना परम आवश्यक है। यह कविता जीवन की गरिमा, मूल्यपरकता, मानवीय पक्षधरता, करुणा, जीवन विवेक आदि शाश्वत मूल्यों को प्रतिष्ठित करती है।

## 17.3 भवानी प्रसाद मिश्र की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

अब हम भवानी प्रसाद मिश्र की चयनित कविताओं का अध्ययन करेंगे।

### 17.3.1 भवानी प्रसाद मिश्र का कवि परिचय

भवानी प्रसाद मिश्र(1913–1985) : अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि भवानी प्रसाद मिश्र हैं। उन्होंने अपने नए अन्दाज, नयी शैली और नयी काव्य–भाषा का उद्भावन किया जिसने उन्हें लोकप्रिय बनाया। हिंदी साहित्य में वे भवानी भाई के रूप में जाने जाते हैं। गांधी दर्शन से प्रभावित भवानी भाई मूलतः कवि हैं यद्यपि उन्होंने निबंध और संस्मरण विधा में भी साहित्य सृजन किया है। उनके कविता संग्रहों के नाम इस प्रकार हैं—गीत फ़रोश, चकित है दुःख, गांधी पंचशती, बुनी हुई रस्सी, खुशबू के शिलालेख, त्रिकाल संध्या, व्यक्तिगत, परिवर्तन जिए, तुम आते हो, इदम न मम, मानसरोवर दिन, संप्रति, अंधेरी कविताएँ, तूस की आग, कालजयी, अनाम, नीली रेखा तक और सन्नाटा। कवि की कविताओं में निराशा के भावों का प्रत्याख्यान है। आजादी के पहले पराधीनता और आजादी के बाद तानाशाही प्रवृत्ति से जूझना और जीवनानुभवों को कविता में अभिव्यक्त करना भवानी प्रसाद मिश्र का मूल कवि–कर्म है। उनका आदर्श रहा है : "जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख / और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख"। उनकी कविताओं में मस्ती और नाटकीयता से भरे लहजे परिलक्षित होते हैं। मसलन, 'नई इबारत' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों को पढ़ा जा सकता है— 'कुछ लिख के सो कुछ पढ़ के सो / तू जिस जगह जागा सबेरे / उस जगह से बढ़ के सो।' हालाँकि परवर्ती रचनाओं में कवि का यह वैशिष्ट्य क्षीण रूप में ही मिलता है। कवि की कविताओं से गुजरकर यह अहसास होता है कि उनकी कविताएँ पाठक से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करती हैं। प्रकृति और मिट्टी की सोंधी खुशबू से ये कविताएँ भिगी हुई प्रतीत होती हैं। कवि को उनकी कृति 'बुनी हुई रस्सी' पर 1972 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके अलावा उन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान और मध्य प्रदेश शासन के शिखर सम्मान से भी सम्मानित किया गया था।

आइए, अब हम पाठ्यक्रम में निर्धारित भवानी प्रसाद मिश्र की 'गीत फ़रोश', 'सन्नाटा', 'फूल कमल के' और 'कहीं नहीं बचे' कविताओं की पदानुसार क्रमशः व्याख्या करें। प्रत्येक कविता के पदों की व्याख्या के पश्चात आप कवि की काव्य संवेदना से भली–भाँति परिचित हो सकेंगे।

### 17.3.2 'गीत फरोश' कविता का वाचन और विश्लेषण

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

मैं तरह–तरह के

गीत बेचता हूँ;

मैं क़िसिम–क़िसिम के गीत

बेचता हूँ।

जी, माल देखिए दाम बताऊँगा,
बेकाम नहीं है, काम बताऊंगा
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने,
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने;
यह गीत, सख़्त सरदर्द भुलायेगा;
यह गीत पिया को पास बुलायेगा।
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझ को
पर पीछे–पीछे अक़्ल जगी मुझ को;
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान।
जी, आप न हों सुन कर ज्यादा हैरान।
मैं सोच–समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ;
जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ।

यह गीत सुबह का है, गा कर देखें,
यह गीत ग़जब का है, ढा कर देखे;
यह गीत जरा सूने में लिखा था,
यह गीत वहाँ पूने में लिखा था।
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है
यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है
यह गीत भूख और प्यास भगाता है
जी, यह मसान में भूख जगाता है;
यह गीत भुवाली की है हवा हुज़ूर
यह गीत तपेदिक की है दवा हुज़ूर।
मैं सीधे–सादे और अटपटे
गीत बेचता हूँ;
जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ।

जी, और गीत भी हैं, दिखलाता हूँ

जी, सुनना चाहें आप तो गाता हूँ;
जी, छंद और बे–छंद पसंद करें –
जी, अमर गीत और वे जो तुरत मरें।
ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात,
मैं पास रखे हूँ क़लम और दवात
इनमें से भाये नहीं, नये लिख दूँ ?
इन दिनों की दुहरा है कवि–धंधा,
हैं दोनों चीज़े व्यस्त, कलम, कंधा।
कुछ घंटे लिखने के, कुछ फेरी के
जी, दाम नहीं लूँगा इस देरी के।
मैं नये पुराने सभी तरह के
गीत बेचता हूँ।
जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

जी, गीत जनम का लिखूँ, मरण का लिखूँ,
जी, गीत जीत का लिखूँ, शरण का लिखूँ,
यह गीत रेशमी है, यह खादी का,
यह गीत पित्त का है, यह बादी का।
कुछ और डिजाइन भी है, यह इल्मी–
यह लीजे चलती चीज नयी फ़िल्मी।
यह सोच–सोच कर मर जाने का गीत,
यह दुकान से घर जाने का गीत।

जी नहीं, दिल्लगी की इसमें क्या बात?
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन रात,
तो तरह–तरह के बन जाते हैं गीत,
जी, रूठ–रूठ के बन जाते हैं गीत।
जी, बहुत ढेर लग गया, हटाता हूँ,
गाहक की मर्ज़ी, अच्छा जाता हूँ।

मैं बिलकुल अंतिम और दिखाता हूँ–

या भीतर जाकर पूछ आइए आप,

है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप

क्या करूँ मगर लाचार हारकर

गीत बेचता हूँ

जी हाँ, हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ,

मैं किसिम–किसिम के गीत बेचता हूँ।

**व्याख्या :**

**जी हाँ हुज़ूर ———————  मैं गीत बेचता हूँ।**

उपर्युक्त पद्यांश नयी कविता के महत्वपूर्ण कवि भवानी प्रसाद मिश्र की बहुपठित कविता 'गीत फरोश' से उद्धृत किया गया है। अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' में यह कविता पहली बार प्रकाशित हुई थी। बाद में इस कविता के शीर्षक अनुसार कवि के 'गीत फरोश' कविता संग्रह का प्रकाशन हुआ था।

अपनी तंगहाली में ग्राहकों के लिए कविता लिखकर उसे बेचने की स्थिति का चित्रण इस कविता में हुआ है। साथ ही, कवि का तत्कालीन व्यवस्था पर व्यंग्य भी देखा जा सकता है।

कवि अपनी विपन्नावस्था का संकेत करते हुए कहता है कि आज मेरी स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि मुझे अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए जिन शब्दों को मैंने अत्यंत आत्मीयतापूर्वक संजोया था उन्हें बेचना पड़ रहा है। मैं अपनी कलम बेचने में यकीन नहीं करता लेकिन त्रासद परिस्थितियों में इसके सिवा मेरे पास और कोई चारा नहीं है। कोई भी सच्चा कवि अपनी कलम बेचना नहीं चाहता है पर भीषण आर्थिक कष्ट में वह वैसा करने के लिए लाचार और विवश हो जाता है। कवि ने ऐसी परिस्थिति की ओर संकेत किया है। वह बिना किसी संकोच और ग्लानि के स्पष्ट कहता है कि जी हाँ, हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ। भाँति–भाँति के गीत बेचता हूँ। ध्यान देने की बात है कि परिस्थितियाँ मनुष्य की ग्लानि और संकोच को दूर कर देती हैं। दूसरी बात यह है कि कवि कविता नहीं गीत बेच रहा है। कविता और गीत में निहित अंतर आप समझते ही होंगे। गीतों में लयात्मकता, प्राणावेग, तल्लीनता आदि होती हैं। इन भावों से सृजित गीतों को बेचना सीने पर पत्थर रखने के समान है। गीत बेचना कवि का शौक़ नहीं बल्कि मजबूरी है।

आप जानते हैं कि पूँजीवादी दौर में सब कुछ बिकाऊ है। कवि के पास गीतों का अथाह भंडार है। कवि ग्राहकों से आग्रह करता है कि आप गीत पसंद कीजिए। आपकी पसंद के गीतों का कोई न कोई अर्थ अवश्य होगा। माल पसंद आ जाए तो उसका दाम बता दूँगा। मेरे गीत आपके किसी न किसी काम के साबित होंगे। सुख हो अथवा दुःख, आशा हो या निराशा, जय हो अथवा पराजय, चिंता हो अथवा आनंद, प्रेम हो अथवा विरह उसके अनुकूल गीत आपको मेरे पास मिल जाएँगे। आपकी परिस्थितियों के अनुकूल मेरे गीत आपके भावों के साथ–साथ यात्रा करने में सफल होंगे। मेरे सभी गीत सार्थक हैं, निरर्थक हो ही नहीं सकते। यदि आप मेरे गीतों के अर्थ नहीं ग्रहण कर सकते और आपको पसंद न आएँ तो मैं उनका अर्थ बताने के लिए तैयार हूँ। कवि स्पष्ट शब्दों में कहता है कि उसके गीत किसी न किसी काम के हैं, बेकार और निरर्थक नहीं हैं। पहले–पहल गीत बेचने में उसे शर्म लगी थी, लेकिन कुछ दिनों बाद वह भाव भी नहीं रहा। पूँजीवादी समय ने हर व्यक्ति को महज उपभोक्ता बनाकर छोड़ दिया है। यहाँ सब कुछ बेचा और ख़रीदा जा सकता है। परिवर्तित समय और समाज में मनुष्य अपना ईमान तक बेचने में लज्जा महसूस नहीं कर रहा

है। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए ईमान, धर्म आदि सबकुछ दांव पर लगा दे रहे हैं। कवि तो अपनी मेहनत से गीत बेच रहा है जिनका सृजन उसने अपनी प्रतिभा और जीवनानुभवों के माध्यम से साकार किया है। ख़ैर, आप इस पर अधिक न सोचें और परेशान न हों।

कहना न होगा कि भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने समय और समाज का यथार्थ चित्र अंकन किया है तथा एक कवि अथवा गीतकार की मनःस्थितियों को सार्थक ढंग से उकेरा है। ध्यान देने की बात है कि अपनी शोचनीय स्थिति में भी कवि ने रचना की मस्ती और जीवंतता में कोई कमी होने नहीं दी है।

**यह गीत सुबह का है —————— गीत बेचता हूँ।**

इन पंक्तियों में कवि ग्राहक को अपने माल का बखान करते हुए कहता है कि उसके पास सुबह–शाम के अलग–अलग गीत हैं। गीतों का वैविध्य है। बस ग्राहक इन गीतों को गाकर देखें और समझे कि गीत सुबह का है अथवा शाम का, सुख का है अथवा दुःख का, भूख बढ़ाने वाला है या भूख जगाने वाला। कहने का आशय है कि कवि के पास व्यापक जीवन संदर्भ के विविध भावों के गीत मौजूद हैं। जो भी गीत अभी तक उन्होंने ग्राहकों को दिखाए, वे पसंद न आए तो वह और भी गीत दिखा सकता है। उसके पास गीतों का अक्षय भंडार है। अगर वे गीत भी पसंद न आए तो ग्राहकों की पसंद के अनुसार गीत रचने को तैयार है। कवि कहता है कि श्रीमान अब तो आपकी मर्जी पर निर्भर है। आप जिस तरह का गीत पसंद करते हैं और जैसा गीत ख़रीदना चाहते हैं मैं तत्काल आपके सामने वैसा गीत रचकर प्रस्तुत कर सकता हूँ। मैं रात–दिन गीत ही लिखता रहता हूँ। आवश्यकता के अनुसार गीत रचने में सक्षम हूँ। मेरे पास कलम और दवात दोनों मौजूद हैं। तत्काल आपकी पसंद का गीत लिखकर पेश कर सकता हूँ। नए पुराने सभी प्रकार के गीत रचने में में काबिल हूँ। बस इतना बताया जाए कि नए गीत चाहिए या पुराने। प्रिय वियोग में डूबी नायिका की भावनाओं को अपने गीतों में क़ैद कर सकता हूँ तो प्रिय–वियोग से व्यथित नायिका की मृत्यु को भी अपनी रचनाओं में उभार सकता हूँ। आप केवल अपनी पसंद और रुचि बता दें तो उसी के अनुरूप गीत प्रस्तुत कर दूँगा। यह एक गीत है उनके लिए जो अपने को बाजार के हवाले कर चुके हैं और जिनकी रुचि नितांत निम्न स्तर की हो चुकी है। ऐसे लोगों के मनोरंजन करने वाले गीत भी मेरे पास हैं।

**जी, गीत जनम का लिखूँ —————— गीत बेचता हूँ।**

इन पंक्तियों में कवि ने कहा है कि मैं मानव जीवन की प्रत्येक स्थिति के अनुसार गीतों की रचना कर सकता हूँ। जन्म–मृत्यु, हार–जीत, आदि तमाम डिजाइन के गीत मेरे पास हैं। इल्मी हो या फिल्मी, चिंता हो अथवा मस्ती सभी प्रकार के गीत लिख सकता हूँ। आपको कोई गीत पसंद न आए तो कोई बात नहीं। मैंने आपको बहुत माल दिखा दिया है, सामानों का ढेर लग चुका है। लेकिन, आपसे इतना अनुरोध है कि आप अपनी पसंद बता दें, आपकी सेवा में वैसा गीत तत्काल रचा जाएगा। जरा ठहरिए, उठकर न जाएँ, मैं आपको अपना आख़िरी गीत दिखाता हूँ। हो सकता है कि वह आपकी रुचि के अनुसार हो। मुझे पता है कि गीत बेचना पाप है। लेकिन भूखा क्या नहीं करता? मैंने लाचारी में यह पेशा अपनाया है।

जिस प्रकार एक विक्रेता अथवा फेरीवाला अपने सामान की खूबी बताता है, इसी तरह इस कविता में कवि ने अपने गीतों के गुणों का बखान किया है। बाजारवादी अर्थव्यवस्था में उसकी शोचनीय आर्थिक स्थिति ने उसे लाचार और विवश बना दिया है। इस कविता को समझने के लिए कवि के 'गीत फरोश' के बारे में जो कहा है, उसे पढ़ लिया जाए– 'गीत फरोश शीर्षक हंसाने वाली कविता मैंने बड़ी तकलीफ में लिखी थी। मैं पैसे को कोई महत्व नहीं देता लेकिन पैसा बीच–बीच में अपना महत्व स्वयं प्रतिष्ठित करा लेता है। मुझे अपनी बहन की शादी करनी थी। पैसा मेरे पास था नहीं तो मैंने कलकत्ते में बन रही फिल्म के लिए गीत लिखे। गीत अच्छे लिखे गए। लेकिन मुझे इस

बात का दुःख था कि मैंने पैसे लेकर गीत लिखे। ———मैं कुछ लिखूँ इसका पैसा मिल जाए, यह अलग बात है, लेकिन कोई मुझसे कहे कि इतने पैसा देता तुम गीत लिख दो। यह स्थिति मुझे बहुत नापसंद। क्योंकि मैं ऐसा मानता हूँ कि आदमी की जो साधना का विषय है वह उसकी जीविका का विषय नहीं होना चाहिए। फिर कविता तो अपनी इच्छा से लिखी जाने वाली चीज नहीं है। वह अनायास उत्पन्न होती है। इस तकलीफदेह पृष्ठभूमि में लिखी गई 'गीत फरोश'।

इस कविता में समाज की कला विमुखता और आर्थिक असमानता पर गहरी चोट है। पतनोन्मुखी समाज की मानसिकता को उजागर करती है। पूरी कविता में गीत की मिठास बनी हुई है। यहाँ कवि की नैतिकता और मानव मूल्य की प्रतिष्ठा की कामना परिलक्षित होती है। कविता से गुजर कर पता चलता है कि असह्य दुःख और अभाव में हास्य और व्यंग्य की धारा प्रवाहित हो सकती है। कवि की समृद्ध संस्कृति चेतना और मानवीय मूल्यबोध की चिंता भी उक्त कविता के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। साहित्यकारों की यथार्थ स्थिति को यह कविता व्यक्त करती है। भाषा की सहजता और जीवंतता कविता को सर्वजन के लिए बोधगम्य बनाती है। भवानी प्रसाद मिश्र की इस कविता को काव्यप्रेमियों ने सर्वाधिक पसंद किया है।

### 17.3.3 'सन्नाटा' कविता का वाचन और विश्लेषण

तो पहले अपना नाम बता दूँ तुमको
फिर चुपके—चुपके धाम बता दूँ तुमको;
तुम चौंक नहीं पड़ना, यदि धीमे—धीमे
मैं अपना कोई काम बता दूँ तुमको।

कुछ लोग भ्रांतिवश मुझे शांति कहते हैं,
निस्तब्ध बताते हैं कुछ चुप रहते हैं;
मैं शांत नहीं, निस्तब्ध नहीं, फिर क्या हूँ?
मैं मौन नहीं हूँ, मुझमें स्वर बहते हैं।

कभी—कभी कुछ मुझमें चल जाता है,
कभी—कभी कुछ मुझमें जल जाता है;
जो चलता है, वह शायद है मेढक हो,
वह जुगनू है, जो तुमको छल जाता है।

मैं सन्नाटा हूँ, फिर भी बोल रहा हूँ,
मैं शांत हूँ फिर भी डोल रहा हूँ;
यह 'सर—सर' यह 'खड़—खड़' सब मेरी है
है यह रहस्य मैं इसको खोल रहा हूँ।

मैं सूने में रहता हूँ, ऐसा सूना,
जहां घास उगा रहता है ऊना;
और झाड़ कुछ इमली के, पीपल के,
अंधकार जिनसे होता है दूना।

तुम देख रहे हो मुझको, जहां खड़ा हूँ !
तुम देख रहे हो मुझको जहां पड़ा हूँ !
मैं ऐसे ही खंडहर चुनता फिरता हूँ,
मैं ऐसी ही जगहों में पला, बढ़ा हूँ।

हाँ, यहाँ किले की दीवारों के ऊपर,
नीचे तलघर में या समतल पर, भू पर,
कुछ जन–श्रुतियों पर पहरा यहाँ लगा है,
जो मुझे भयानक कर देती है छू कर।

तुम डरो नहीं, डर वैसे क़हाँ नहीं है ?
पर ख़ास बात डर की कुछ यहाँ नहीं है;
बस एक बात है, वह केवल ऐसी है,
कुछ लोग यहाँ थे, अब वे यहाँ नहीं हैं।

यहाँ बहुत दिन हुए एक थी रानी,
इतिहास बताता उसकी नहीं कहानी;
वह किसी एक पागल पर जान दिए थी,
थी उसकी केवल एक यही नादानी।

यह घाट नदी का, अब जो टूट गया है,
यह घाट नदी का, अब जो फूट गया है;
वह यहाँ बैठकर रोज–रोज गाता था,

अब यहाँ बैठना उसका छूट गया है।

शाम हुए रानी खिड़की पर आती,
थी पागल के गीतों को वह दुहराती;
तब पागल आता और बजाता बंशी,
रानी उसकी बंशी पर चूप कर गाती

किसी एक दिन राजा ने यह देखा,
खिंच गयी ह्रदय पर उसके दुःख की रेखा;
वह भरा क्रोध में आया और रानी से,
उसने माँगा इन सब साँझो का लेखा।
रानी बोली पागल को जरा बुला दो,
मैं पागल हूँ, राजा तुम मुझे भुला दो;
मैं बहुत दिनों से जाग रही हूँ राजा,
बंशी बजवा कर मुझको जरा सुला दो।

वह राजा था हाँ, कोई खेल नहीं था,
ऐसे जवाब से उसका मेल नहीं था;
रानी ऐसे बोली थी, जैसे उसके
इस बड़े क़िले में कोई जेल नहीं था।

तुम जहां खड़े हो, यहीं कभी सूली थी,
रानी की कोमल देह यहीं झुली थी;
हाँ, पागल की भी यही, यहीं रानी की,
राजा हँस कर बोला, रानी भूली थी।

किंतु नहीं फिर राजा ने सुख जाना,
हर जगह गूंजता था पागल का गाना;
बीच–बीच में, राजा तुम भूले थे,

रानी को हँसकर सुन पड़ता था ताना।

तब और बरस बीते, राजा भी बीते,
रह गए क़िले के कमरे–कमरे रीते;
तब मैं आया, कुछ मेरे साथी आए,
अब हम सब मिलकर करते हैं मनचीते।

पर कभी–कभी जब पागल आ जाता है,
लाता है रानी को, या गा जाता है;
तब मेरे उल्लू, साँप और गिरगिट पर,
अनजान एक सकता–सा छा जाता है।

———————

आपने 'गीत फरोश' और 'सन्नाटा' कविताएँ पढ़ ली होंगी। ये दोनों कविताएँ लयात्मक और तुकांत हैं। दोनों कविताएँ गेय हैं अर्थात् गायी जा सकती हैं। 'सन्नाटा' कविता की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें एक कहानी है। कविता में कथा का समावेश उसे केवल रोचक नहीं बनाता है बल्कि नया आयाम भी देता है। यह कविता पाठक अथवा श्रोता की चित्तवृत्ति का विकास करने के साथ–साथ एक भिन्न संसार में पहुँचाती है। आइए, अब हम 'सन्नाटा' शीर्षक लंबी कविता की व्याख्या पढ़ें ताकि इसके माध्यम से कवि भवानी प्रसाद मिश्र की चिंता और चेतना से परिचित हो सकें।

**व्याख्याः**

**तो पहले ————— तुमको छल जाता है।**

नयी कविता के प्रतिनिधि कवि भवानी प्रसाद मिश्र की 'सन्नाटा' से उपर्युक्त पद अवतरित किए गए हैं। इस कविता का शीर्षक जिज्ञासाजन्य कई अंतर्विरोधी विचारों को प्रतिबिम्बित करती है। 'सन्नाटा' में तमाम मानसिक उथल–पुथल के भाव अंकित हैं। यह सन्नाटा अपनी स्मृति में कई अमानवीय कृत्यों का साक्षी रहा है जो अपने सीने में अनेकानेक रहस्यों को समाहित किया हुआ है। इनमें से कुछ अनुभवों को साझा किया गया है। पुनः जिस प्रकार कहानी में एक औत्सुक्य बना रहता है, फिर क्या हुआ, आगे क्या हुआ का भाव हुआ करता है; इस कविता की शुरुआत में ही सन्नाटा प्रत्यक्ष रूप में पाठकों से अपना परिचय और संवाद स्थापित करते हुए कवि ने दिखाया है। वह अपना नाम, स्थान आदि बताकर परिचय को आगे बढ़ाना चाहता है। लेकिन पाठकीय औत्सुक्य बनाए रखने के लिए न अपना नाम बताता है और न धाम। सन्नाटा का शब्दकोशीय अर्थ है स्तब्धता, चुप्पी, मौन, शांति, निर्जनता। लेकिन, शांति या चुप्पी, मौन अथवा निर्जनता को सन्नाटा समझना भ्रांति है। शांति, चुप्पी आदि की स्थिति आनंददायक भी हो सकती है जबकि सन्नाटे की स्थिति सदा कष्टदायी होती है। सन्नाटा एक ऐसे वातावरण की ओर संकेत करता है जिसमें किसी भी प्रकार का कोई शब्द न हो रहा हो। उक्त स्थिति में पड़कर भयभीत या भौंचक होने का भाव होता है। निराला नीरव विशेष को सन्नाटा कहा जा सकता है। नीरवता में भी स्वर बहते रहते हैं। इसलिए इसे निराला नीरव विशेष कहना अधिक युक्ति–युक्त प्रतीत होता है। सन्नाटा स्वयं पूछता है कि यदि मैं शांत नहीं, स्निग्ध नहीं तो फिर मैं क्या हूँ? मैं भोला–भाला नहीं हूँ। मुझमें स्वर बहते

रहते हैं। कभी–कभी मुझसे कोई टकरा कर चलने लगता है जैसे किसी मेढक की उछल–कूद हो। कभी–कभी मुझमें कोई ज्योति–स्फुलिंग चमकने लगता है जैसे जुगनू मेरे अस्तित्व को चुनौती दे रहा है। सन्नाटा भरे वातावरण में मनुष्य कई प्रकार के भ्रमों का शिकार होता रहता है। यहाँ एक त्रासद और ख़ास वातावरण की ओर संकेत मिलता है।

कवि ने 'मैं' शैली का प्रयोग किया है। कथा–संरचना का निर्वाह काव्य के शिल्प–विधान को प्रभावी बनाता है। सन्नाटा का सुंदर मानवीकरण किया गया है। आम बोलचाल की सहज शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

**मैं सन्नाटा हूँ ————— अंधकार जिनसे होता है दूना।**

प्रस्तुत पंक्तियाँ भवानी प्रसाद मिश्र की महत्वपूर्ण कविता 'सन्नाटा' से अवतरित हैं। इन पंक्तियों में सन्नाटा अपनी क्रियाशील गतिविधियों के साथ प्रस्तुत है।

सन्नाटा अपनी परिस्थितिजन्य विशेषताओं को रेखांकित करते हुए कहता है – जैसे कहने के लिए तो मैं सन्नाटा हूँ परंतु मेरा स्वरूप स्वयं में ही इतना मुखर है कि वह सब कुछ स्पष्ट कर देता है। देखने में तो मैं बहुत शांत हूँ परंतु मेरे अंतर्मन में बेहद उथल–पुथल है। यह 'सर–सर', 'खड़–खड़' की ध्वनियाँ मेरी ही क्रियाएँ हैं। इनके माध्यम से मैं बहुत कुछ छिपी हुई रहस्यजनित घटनाओं की पोल खोलना चाहता हूँ। आशय यह है कि सन्नाटा वस्तुतः शब्दहीन और क्रियाहीन न होकर बेहद मुखर और सक्रिय है जो अपनी निस्तब्धता में अनेक रहस्यों को दमित किए हुए हैं जिन्हें वह 'सर–सर' 'खड़–खड़' के साथ प्रकट कर रहा है।

वह आगे कहता है कि मैं प्रकृति, परिवेश और परिस्थिति के अनुकूल आचरण करता हूँ। जब पूरे परिवेश में गहरा सूनापन छाया रहता है तब मैं भी ऐसा सूना हो जाता हूँ जैसे नाम मात्र के घास उगी रहती है। कहीं घने अंधकार भरे वातावरण में इमली तथा पीपल की सघनता के बीच बैठकर मैं उस अंधकार को और भी घना कर देता हूँ। वस्तुतः यहाँ सन्नाटा की स्वरूपगत विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं।

**तुम देख रहे हो ————— कर देती है छू कर।**

इन पंक्तियों में सन्नाटा अपने निवास स्थान का पता और परिचय रहस्यात्मक ढंग से देते हुए कहता है कि क्या तुम उस स्थान को देख रहे हो जहां मैं खड़ा हूँ, जहां मैं पसरा हुआ हूँ। दरअसल मैं ऐसे खंडहरों की तलाश में ही रहता हूँ। इन्हीं स्थानों में ही मेरा लालन–पालन हुआ है अर्थात् सन्नाटा भीड़ और कोलाहल से दूर, जनजीवन की सक्रिय उपस्थिति से दूर किन्ही पुरानी इमारतों, खंडहरों के बीच पसरी होती है जिन्हें निर्जन कहा जाता है। जैसे इतिहास में विस्मृत किसी किले की दीवारों के ऊपर अथवा नीचे किसी तलघर की भूमि पर इसकी संरचना से जुड़ी कुछ जनश्रुतियाँ, लोकापवाद आदि मिथकों के रूप में प्रचारित होकर मेरे निवास स्थान को भयानक बना डालती हैं। तात्पर्य है कि सन्नाटा भरे स्थान से अनेक प्रकार की किंवदंतियाँ, अप्राकृतिक शक्तियाँ, घटनाएँ और जनश्रुतियाँ जुड़कर उसे अधिक भयानकता प्रदान करती हैं।

**तुम डरो नहीं ————— केवल एक यही नादानी।**

उपर्युक्त अवतरित अंश में कवि कहता है कि सन्नाटा से जुड़ी कथाएँ बनाई हुई होती हैं। इन कथाओं से लोग डर जाते हैं लेकिन कवि आश्वस्त करता है कि इनसे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे भी डर क़हाँ नहीं होता है। अर्थात कवि अपने समकाल में पसरे डर, भय और आतंक के माहौल की ओर संकेत कर रहा है। डर सर्वत्र अपनी उपस्थिति दर्ज करना चाहता है। डरा हुआ इंसान अपना विवेक, बुद्धि आदि खो बैठता है। सत्ता अपने वर्चस्व के लिए डराए रखना चाहती है। आगे की पंक्तियों में कवि एक कथा सुना रहा है कुछ लोग जो यहाँ थे अब वे नहीं हैं। सन्नाटा

का संबंध कहीं न कहीं इतिहास के कुछ अलिखित पन्नों से भी जुड़ा रहता है। इसी संदर्भ में संवाद को आगे बढ़ाते हुए कवि एक कहानी सुनाता है। वर्षों पहले यहाँ एक रानी हुआ करती थी। किंतु इतिहास के पन्नों में उसका नाम कहीं भी लिखा हुआ नहीं है। वह रानी किसी पागल से प्रेम करती थी। वही उसकी सबसे बड़ी भूल और नादानी थी राजा की दृष्टि में। इतिहास अधूरा होता है। उसकी सचाई भी यदा–कदा प्रश्नों के घेरे में रहती ही है। इतिहास में निहित अंतर्विरोध की ओर भी इस अवतरित अंश के माध्यम से संकेत मिलता है।

**यह घाट नदी का ——————— साँझों का लेखा।**

अवतरित अंश में सन्नाटा रानी की कहानी को आगे बढ़ाते हुए कहता है कि नदी का यह जो घाट टूट–फूट गया है कभी यहाँ वह पागल आया करता था। इसी घाट पर बैठे शाम को बंशी की सुमधुर धुन बजाया करता था। रानी अपने महल की खिड़की के पास आतीं और पागल की सुमधुर ध्वनि से आत्महरा हो जाया करती थीं। मुग्ध होकर सुना करती थी। वंशी की ध्वनि के साथ ताल मिलाते हुए रानी खुद गाने लगती थी। प्रेमाभिव्यक्ति का यह क्रम लगातार चलता रहा। अचानक एक दिन राजा के सामने यह रहस्य खुल गया। राजा के हृदय को गहरा धक्का लगा। उसे बड़ी चोट पहुँची। उसे क्रोध आया। उसने रानी से तमाम शाम का हिसाब माँगा। अर्थात, एक स्त्री के हृदय की अनुभूतियों और इच्छाओं पर पुरुष सत्ता का नियंत्रण हमेशा रहा है। यहाँ भी मर्दवादी सोच का प्रतिफलन दिखाई पड़ता है। राजा उसी सत्ता का प्रतीक है। वह रानी के इस आचरण से तिलमिला उठता है। रानी को मर्यादा उल्लंघन के अपराध में कठघरे में खड़ा कर दिया जाता है। अतः स्पष्ट है कि प्राचीन काल से स्त्री–अस्मिता, स्त्री अधिकार और स्त्री स्वातत्र्य को कभी धर्म के नाम पर तो कभी मर्यादा अथवा कुल–कानि के बहाने पुरुषवर्चस्व वाले समाज ने हमेशा अपनी मुट्ठी में दबाए रखा है।

**रानी बोली पागल ——————— कोई जेल नहीं था।**

इस अवतरित अंश में कवि की स्त्री चिंता और स्त्री दृष्टि का पता चलता है। रानी द्वारा आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वातंत्र्यबोध को भी कवि ने कविता में व्यक्त किया है। कहानी के अगले अंश को आगे बढ़ाते हुए सन्नाटा के माध्यम से कवि कहता है कि सता द्वारा पूछे गए सवाल से रानी तनिक भी विचलित नहीं होती हैं। वह पूरे साहस और आत्माभिमान के साथ उस पागल को बुलाने के लिए राजा से अनुरोध करती है। वह साफ शब्दों में कहती है कि मैं (उसके प्रेम में) पागल हूँ। मुझे भुला दो। मैं जैसे बहुत दिनों से जाग रही हूँ, मैं वर्षों से सच्चे प्रेम की तलाश में थी, अब जाकर वह मुझे हासिल हुआ है। उस पागल की बंशी की धुन ही मेरे हृदय की अतृप्ति को तृप्त कर रही है। उसके तान मेरे हृदय में मुकुल भरते हैं। अतः पागल को बुलाकर उससे बंशी वादन करवा कर मेरे हृदय को शांत करो।

रानी के मुख से ऐसे अप्रत्याशित उत्तर सुनकर राजा उत्तेजित हो उठता है। राजा तो राजा होता है। फ़रमान उसके चलते हैं। उसकी जुबान से निकली हुई बात आदेश होती है। रानी के जवाब का उसके सामने कोई मायने नहीं रखता है। एक स्त्री की जुबान से (भले ही रानी की क्यों न हो) अपने प्रेम की दृढ़ अभिव्यक्ति, निडर स्वीकृति, अपार साहस आदि सुनना राजा के लिए असह्य हो उठा। शायद, रानी को यह भी मालूम न था कि उसके लिए भी दंड का विधान हो सकता है। संभवतः यह भी हो सकता है कि वह अपने प्रेम के सामने दंड की कुछ परवाह ही नहीं करती थी। स्पष्ट है कि राजसत्ता के सामने प्रेम और लोक सत्ता को अधिक महत्व दिया गया है।

**तुम जहां खड़े हो ——————— सुन पड़ता था ताना।**

प्रस्तुत पद्यांश में 'सन्नाटा' रानी और पागल के प्रेम की परिणति पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही, यहाँ प्रेम की शाश्वतता को भी रेखांकित किया गया है।

कथावाचक की भूमिका में सन्नाटा है। कवि सन्नाटा के माध्यम से कहता है कि तुम आज जहां खड़े हो, वहाँ कभी सूली हुआ करती थी जिस पर रानी और पागल की कोमल प्रेम कथा को लटका दिया गया था। केवल इस आरोप से कि उनमें प्रेम था। राजा ने रानी और पागल को मृत्युदंड देकर अट्टहास किया। उसने अपने आपको गौरवान्वित महसूस किया। उसके अनुसार प्रभुसत्ता की विजय हुई। वह कहता है कि रानी तुम भोली थी क्योंकि तुमने अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाने का दुस्साहस किया। लेकिन इस घटना के बाद राजा को कभी कोई चैन नहीं मिला उसे फिर कभी शांति नहीं मिली। प्रेम को दफना देने का झूठा आत्मतोष उसके हृदय को अशांत करता रहा। उसे हर जगह पागल का गाना गूंजता हुआ सुनाई पड़ता था। कभी–कभी उसे रानी का ताना भी सुनाई पड़ने लगा था। वह जैसे सुना रही हो कि राजा तुम भोले थे। प्रेम कभी मरता नहीं, मिटता नहीं। सत्ता जरूर एक दिन मिट जाती है। प्रेम को सूली पर नहीं चढ़ाया जा सकता। प्रेम स्वयं अविनाशी है। प्रेम को कारागार में अवरुद्ध नहीं किया जा सकता। उसे किसी भी समाज व्यवस्था अथवा राजकीय तंत्र के किसी भी कानून और संविधान के तहत प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। प्रेम की सत्ता सर्वोपरि है। अतः राजा को मृत्यु के उपरांत पागल का गाना सुनाई पड़ना दरअसल पूरी राज सत्ता को चुनौती है। प्रेम के शाश्वत रूप का मनोज्ञ चित्रण है। कथा एवं संवाद शैली का सुंदर प्रयोग हुआ है।

**तब और बरस बीते ———————— सकता–सा छा जाता है।**

'दूसरा सप्तक' और 'नयी कविता' के महत्वपूर्ण कवि भवानी प्रसाद मिश्र की प्रतिनिधि कविता 'सन्नाटा' से उपर्युक्त पंक्तियाँ उद्धृत हैं। कविता के इन अंतिम दो पदों में कवि ने अमर प्रेम की कथा के अंकन का समापन किया है।

इस अंश में सन्नाटा के माध्यम से कवि ने कहा है कि रानी और पागल के गुजरे कई वर्ष बीते। राजा भी गुजर गया। बस क़िले की बेवस इमारतें ही शेष रह गयीं। महल में सूनापन छा गया। किसी का कोई अस्तित्व नहीं बचा। तभी मैं अपने साथियों के साथ यहाँ आया और फिर हम यहाँ रहने लगे। अब हम सभी मिलकर यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। परंतु जब कभी वह पागल रानी के साथ यहाँ आ जाता है तब जैसे वह मेरे अस्तित्व को ललकारने लगता है। उस वक्त मैं तथा मेरे साथी–उल्लू, साँप, गिरगिट सभी सकते में आ जाते हैं। वह हमारी दिनचर्या में हलचल मचा देता है। हमें प्रभावित कर देता है।

प्रेम संवेदना में बेहद प्रखरता और शक्ति होती है। उसमें किसी भी काल, घटना अथवा परिस्थिति को प्रभावित करने का पूरा सामर्थ्य होता है। उसे चुनौती देनेवाले चाहे कितने ही शक्ति संपन्न क्यों न हों, सदा प्रेम की ही विजय होती है। इस कविता में जहां एक ओर सन्नाटा की निस्तबद्धता है तो दूसरी ओर उसकी प्रखर मुखरता अभिव्यंजित हुई है। इस कविता में सन्नाटा का मूर्त रूप और मानवीकरण को बड़ी शिद्दत के साथ प्रस्तुत करने में कवि भवानी प्रसाद मिश्र को विशिष्ट सफलता प्राप्त हुई है। पूरी कविता में सन्नाटा मानो पाठकों से संवाद स्थापित करती है। सहज, सरल और प्रभावशाली भाषा शैली के कारण यह कविता आम पाठक के लिए भी अत्यंत बोधगम्य है।

### 17.3.4 'फूल कमल के' कविता का वाचन और विश्लेषण

फूल लाया हूँ कमल के।

क्या करूँ' इनका ?

पसारें आप आँचल,

छोड़ दूँ;

हो जाए जी हल्का!

किन्तु होगा क्या कमल के फूल का?

कुछ नहीं होता
किसी की भूल का——————
मेरी कि तेरी हो——————
ये कमल के फूल केवल भूल हैं !
भूल से आँचल भरूँ ना
गोद में इनका सँभाले
मैं वजन इनके मरूँ——— ना

ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं,
इन्हें हूँ बीच से लाया,
न समझो तीर पर के हैं ।

भूल भी यदि है
अछूती भूल हैं !
मानसरोवरवाले
कमल के फूल हैं।

———————

'फूल कमल के' शीर्षक कविता सबसे पहले 'दूसरा सप्तक' के प्रथम संस्करण में प्रकाशित हुई जो प्रगति प्रकाशन दिल्ली से छपा था। इसका दूसरा ड्राफ्ट 'दूसरा सप्तक' के दसवें संस्करण में सामान्य परिवर्तन के साथ छपा था जो ज्ञानपीठ से 2009 में आया था। इस कविता का तीसरा ड्राफ्ट कवि के 'ये कोहरे मेरे हैं' कविता संग्रह में संकलित है। आपके लिए प्रस्तुत कविता 'दूसरा सप्तक' के दसवें संस्करण से ली गयी है।

भवानी प्रसाद मिश्र ने इस देश के साधारण लोगों के रोजमर्रा की जिंदगी को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। उनकी कविताओं का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है कि इनमें सहज, सरल और बोलचाल की शब्दावली का प्रयोग। इससे पाठकों को अर्थ—ग्रहण करने में कोई कठिनाई नहीं होती। पाठक कवि के भावों का सहयात्री बनकर कविता को बोधगम्य बनाता है। वास्तव में उनकी सहजता आधुनिक हिंदी कविता में अपने जैसी एक ही है। सहज अनुभूति को सहज भाषा में असाधारण

अभिव्यक्ति प्रदान कर देना इनके कवि कर्म की प्रमुख विशेषता है। एक प्रेमपूर्ण, राग–भीगा मानववाद उनकी एक–एक पंक्ति में बसा हुआ है। समष्टि के सामने समर्पण की भावना उनके काव्य में प्रबल है। अपने गीतों को कमल के फूलों की तरह वे मनुष्यता के आँचल में रख देना चाहते हैं। आइए, 'फूल कमल के' कविता की व्याख्या करते हैं।

**व्याख्या :**

**फूल लाया हूँ कमल के ————— कमल के फूल का ?**

हिंदी के महत्वपूर्ण कवि भवानी प्रसाद मिश्र की 'फूल कमल के' शीर्षक कविता से अवतरित इस कवितांश में कवि का कहना है कि मैं गीत रूपी कमल के फूल लेकर आया हूँ। कमल के फूल प्रतीक हैं प्रेम के, प्रणय– निवेदन और आदर सत्कार के। सांस्कृतिक रूप में इसका अलग महत्व है। कवि अपनी प्रेयसी/आराध्य से पूछ रहा है कि वह कमल के फूलों का का क्या करे? यदि आप अपना आँचल पसार दे तो उसमें कमल के फूल रूपी मनोभावना अर्थात् मन के भावों को आँचल में रख दे? आप जानते हैं कि आँचल सबसे सुरक्षित स्थान होता है। उसके आँचल में कमल के फूल यानी ह्रदय की भावनाएँ डाल कर वह अपने को हल्का महसूस करेगा। पुनः कवि का सवाल है कि कमल के फूल का क्या होगा? अर्थात, वह अपने मनोभावों को तो अर्पित कर देगा, भावों को व्यक्त कर भी दे तो उसे ग्रहण करने वाला वाली स्वीकार करे तब कोई बात बने।

**कुछ नहीं होता ————— मरूँ ना।**

इन पंक्तियों में कवि ने कहा है कि कुछ नहीं होता है कमल के फूल अर्पित कर देने से। मूल बात है कि जो कुछ समर्पित कर दिया गया वह स्वीकृत हुआ कि नहीं। कवि की प्रेयसी के माध्यम से कहा गया है कि यह जो आकर्षण जन्मा है यह एक भूल है क्योंकि सामाजिक मान्यताओं और वर्जनाओं के कारण यह भूल है और इसी अर्थ में कमल का फूल भी भूल है। चाहे यह भूल तेरी हो या मेरी, लेकिन भूल तो है ही। ध्यान देने की बात है कि कवि ने पहले पद में 'पसारें आप आँचल' कहा था। वहाँ 'आप' का संबोधन था जबकि यहाँ 'तेरी–मेरी' का प्रयोग है। अर्थात, इस पद की वक्ता प्रथम पद के वक्ता की तुलना में चाहे आयु में हो, सामाजिक पद–प्रतिष्ठा अथवा अनुभव में हो, उसकी स्थिति बड़ी है। यह भूल कहीं से भी जन्मी हो लेकिन यह एक भूल ही है। इसे भुला देना ही श्रेयस्कर है। इसे आँचल में भरना भूल है। इस भार को वहन करते हुए यानी इस भाव का वजन ढोते हुए मरना ठीक नहीं है।

यह ह्रदय के अंतस्थल से उत्पन्न है। यदि आप आँचल पसार दें तो मैं इन्हें आपको सौंपकर हल्का हो जाऊँ। इसका आशय यह है कि कवि के अन्तःस्थल में भावों का उद्वेलन होने के पश्चात रचना प्रसूत होती है। प्रेम के आँचल में सौंपने से कवि अपने आपको धन्य समझेगा। अपने जीवन को कृतार्थ मानेगा। पुनः कवि का सवाल है कि आख़िरकार इससे होता भी क्या है?

**ये कमल के फूल ————— कमल के फूल हैं।**

इन पंक्तियों में कवि स्पष्टता के साथ कहता है कि वह कमल के फूल मानसरोवर के किनारे से नहीं बल्कि उसके बीच से लेकर आया है। किनारा मन की चंचलता का प्रतीक है जबकि बीच सरोवर का आशय अत्यंत गंभीरता है। किनारे से फूल तोड़ कर लाने और बीच सरोवर से फूल लेकर आने में बड़ा अंतर होता है। बीच सरोवर से फूल लाने का मतलब अधिक श्रम और संघर्ष करना है। पुनः किनारे के फूल अछूते नहीं रहते जबकि बीच सरोवर के फूल अछूते होते हैं। ह्रदय की अतल गहराई और मन की कोर से उत्पन्न भावों को मैं लेकर आया हूँ। यह आकर्षण मात्र नहीं है। यदि यह भूल भी है तो निश्छल है। पवित्र भावों से उत्पन्न है बिल्कुल अछूती है।

इस कविता में पुरुष अपने भावों को प्रकट कर रहा है और स्त्री चाहे सामाजिक पद–प्रतिष्ठा के चलते हो अथवा सामाजिक वर्जनाओं के कारण, पुरुष के प्रेम निवेदन को तत्काल स्वीकार नहीं कर रहा है जबकि उसके मन में भी प्रेम के भाव मौजूद हैं। लेकिन वह उतनी गंभीरता से उसे नहीं समझ रही है या ले नहीं पा रही है। इस दृष्टि से यह कविता प्रेम का भारतीय स्वरूप प्रस्तुत करती है।

कवि की यह राग भावना उनकी कविताओं की केंद्रीय विशेषता है। उनका हृदय अत्यंत स्नेहशील और अनुराग पूर्ण है। उनका यह अनुराग जड़ और चेतन तथा मानव और प्रकृति के प्रति समान रूप से है। एक और तो वे मानवतावादी और मानवमात्र के प्रेमी हैं और दूसरी और प्रकृति का सौंदर्य उन्हें इतना प्रिय है कि वह उन्हें आत्मसात सा कर लेता है।

### 17.3.5 'कहीं नहीं बचे' कविता का वाचन और विश्लेषण

कहीं नहीं बचे

हरे वृक्ष

न ठीक सागर बचे हैं

न ठीक नदियाँ

पहाड़ उदास हैं

और झरने लगभग चुप

आँखों में

घिरता है अंधेरा घुप

दिन दहाड़े यों

जैसे बदल गई हो

तलघर में

दुनिया

कहीं नहीं बचे

ठीक हरे वृक्ष

कहीं नहीं बचा

ठीक चमकता सूरज

चाँदनी उछालता

चाँद

स्निग्धता बिखेरते

तारे

काहे के सहारे खड़े
कभी की
उत्साहवंत सदियाँ
इसलिए चली
जा रही हैं वे
सिर झुकाये
हरेपन से हीन
सूखेपन की ओर
पंछियों के
आसमान में
चक्कर काटते दल
नजर नहीं आते
क्योंकि
बनाते थे
वे जिन पर घोंसले
वे वृक्ष
कट चुके हैं
क्या जाने
अधूरे और बंजर हम
अब और
किस बात के लिए रूके हैं
ऊबते कयों नहीं हैं
इस तरंगहीनता
और सूखेपन से
उठते कयों नहीं हैं यों
कि भर दें फिर से
धरती को
ठीक निर्झरों
नदियों पहाड़ों

वन से !

————

'कहीं नहीं बचे' शीर्षक कविता मशीनीकरण के दौर में प्राकृतिक विनाश और मानव जीवन पर पड़नेवाले उसके दुष्प्रभावों का चित्रण है। इसमें कवि का प्रकृति के प्रति आत्मीय भाव और तादात्म्य का भी परिचय मिलता है। भवानी भाई की कविताओं में सतपुड़ा का जंगल हो या नर्मदा के बहाने उनके प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम परिलक्षित होता है। दिनोदिन ठूंठ होती प्रकृति को देखकर उनके हृदय की व्यथा भी यहाँ व्यंजित होती है। कवि की पर्यावरणीय चिंता का उजागर भी सुंदर ढंग से हुआ है। आइए, इस कविता की व्याख्या के माध्यम से कवि की चिंता और चेतना से रु–ब–रु होते हैं।

**व्याख्या :**

**कहीं नहीं बचे ———————— काहे के सहारे खड़े ।**

इन पंक्तियों में भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रकृति और पर्यावरण के समक्ष आनेवाली चुनौतियों और मानव जीवन के आसन्न संकटों पर चिंता व्यक्त की है। विकास के नाम पर हमारे जंगल काटे जा रहे हैं। हरे–भरे पेड़ों का सफाया हो रहा है। हरियाली ख़त्म होती जा रही है। पहाड़, नदी और समुद्र तो हैं लेकिन नाम के वास्ते। 'ठीक से बचे नहीं'। आशय यह है कि पहाड़ों की शोभा है उसके पेड़–पौधे, लता–गुल्म। लेकिन जो पहाड़ अब दिखाई पड़ते हैं बस वे नंगे ही हैं। छोटी नदियाँ नाले में तब्दील हो रही हैं और बड़ी नदियाँ शहर की गंदगी, मिलों और कारख़ानों, उद्योगों के कचड़ों को अपनी धारा में ढोते –ढोते इतनी प्रदूषित हो गई हैं कि उनका पानी पीने लायक नहीं रह गया है। समुद्र में फैलते प्रदूषणों के बारे में जानना हो तो किसी भी समुद्री तट पर जाकर उसका हाल देख सकते हैं। पहाड़ अपनी मौजूदा हालात से उदास हैं और उनसे निकलने वाले झरने लगभग ख़ामोश हैं क्योंकि पर्यावरण में इतना बदलाव आ गया है कि तेज गति से उछल–कूद मचाने वाले सोते दिखाई ही नहीं पड़ते। पर्यावरण असंतुलन के कारण दिन–दहाड़े घुप्प अंधकार छा जाता है। यह इसलिए कि प्रकृति की स्वाभाविक गति को मानवकृत प्रदूषण निरंतर बाधा पहुँचा रही है। मानो पूरी दुनिया में बदलाव आ गया हो। हरे–भरे वृक्षों के अभाव में समय से बारिश नहीं होती है। प्रकृति का अत्यधिक दोहन हो रहा है। फलस्वरूप, जिस अनुपात में हरे–भरे पेड़ और हरियाली आवश्यक है उसका अभाव परिलक्षित होता है। प्रकृति की इस शोचनीय दशा में प्रकृति की निश्चित दिनचर्या बाधित हो रही है। सूर्य की रौशनी, चंद्रमा की चाँदनी और तारों की स्निग्धता भला किसके सहारे रहें?

**उत्साहवंत सदियाँ ———————— नदियाँ पहाड़ी वन सी**

सदियों से प्रकृति अपने नियमों से चलती आ रही थी। परिवेश की गति और प्रकृति को नियंत्रित करने के प्रयास में मनुष्य प्रकृति पर और अंततः अपना विनाश करना शुरू कर दिया है। जो सदियाँ उत्साह से भरपूर थीं मानो अब की विनाश लीला के कारण सिर झुकाए हरेपन से सूखेपन की ओर चली जा रही हैं। हरापन ख़ुशी का और सूखापन दुःख का प्रतीक है। पेड़ कट जाने के कारण पक्षी आकाश में पंक्तिबद्ध हो उड़ते नजर नहीं आते हैं। वे अपने लिए जिन पेड़ों पर घोंसले बनाते उन्हें कभी विकास के नाम पर तो कभी सभ्यता के नाम पर काटा जा चुका है। इतना सब कुछ होने पर भी प्रकृति के प्रति हमारी निर्ममता और असंवेदनशीलता में कोई कमी नहीं आ रही है। आख़िर हम कब समझेंगे कि प्रकृति बचेगी तो हम बचे रहेंगे। हम अपनी संहारकारी आदतों से कब बाज आएँगे? अब कितना विनाश देखना चाहते हैं हम? निरंतर प्रकृति के साथ छेड –छाड के कारण कभी सूखा तो कभी बाढ़ का प्रकोप सहना पड़ रहा है। कितने लोग, मानवेतर प्राणी,

जन–धन का नाश हो रहा है। आख़िर हम कब खड़े होंगे प्रकृति और पर्यावरण को स्वस्थ बनाने के लिए ताकि पेड़ों में हरापन को बचाए जा सके। धरती को 'ठीक निर्झरों, नदियों, पहाड़ों से भरने के सही संकल्प को क्रियान्वित किए बिना प्रकृति, मानव जाति और मानवेतर प्राणी को बचाना असंभव होगा।

इस कविता में प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण और संवर्धन हेतु कवि का आग्रह रहा है। कविता के प्रथमार्ध में कवि की स्वाभाविक क्षीण निराशा का भाव व्यंजित हुआ है। लेकिन उत्तरार्ध में वह पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने और उसकी आवश्यकता पर महत्व दिया है। दरअसल पूरे विश्व की सर्वाधिक प्रमुख समस्या के बारे में कवि ने हमें सचेत कराना चाहा है। हम बहुत अधिक खो चुके हैं, अगर अब भी सचेत और जागरूक नहीं हुए तो हमारा अस्तित्व संकटग्रस्त होगा। कवि की चिंता अत्यंत सहज रूप में संप्रेषित हुई है।

**बोध प्रश्न–1**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।**

1. 'नदी के द्वीप' कविता में निहित प्रतीकात्मकता को स्पष्ट कीजिए।

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

2. द्वीप अपना अस्तित्व बनाए रखना क्यों चाहते हैं?

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

3. 'यह दीप अकेला' कविता के आधार पर कवि की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

4. कवि ने किस प्रकार के दीप को पंक्ति में देने का आग्रह किया है और क्यों?

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

5. कवि अपनी प्रेयसी को किन नए उपमानों से उपमित करना चाहता है और क्यों? अपने भाषा–शैली में उत्तर लिखिए।

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

6. सम्राज्ञी का बिना फूल के आराध्यदेव के दर्शन हेतु आने के कारण बताइए।

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

   ..........................................................................................................................

7. कवि अज्ञेय की कविताओं की मूलभूत विशेषताओं पर आलोकापात कीजिए।

..........................................................................................................................................

..........................................................................................................................................

..................................................................................................................................

8. कवि अज्ञेय की प्रकृति चेतना का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

..........................................................................................................................................

..........................................................................................................................................

..................................................................................................................................

9. ''गीत फरोश' में कवि की गहरी व्यथा एवं मस्ती तथा उल्लास का चित्रण हुआ है'—इस कथन पर विचार कीजिए।

..........................................................................................................................................

..........................................................................................................................................

..................................................................................................................................

10. भवानी प्रसाद मिश्र की प्रकृति और पर्यावरणीय चिंता का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

..........................................................................................................................................

..........................................................................................................................................

..................................................................................................................................

11. भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में निहित ग्राम—जीवन के चित्रण पर विचार कीजिए।

..........................................................................................................................................

..........................................................................................................................................

..................................................................................................................................

12. पठित कविताओं के आधार पर भवानी प्रसाद मिश्र की भाषा—शैली पर प्रकाश डालिए।

..........................................................................................................................................

..........................................................................................................................................

..................................................................................................................................

13. भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं के आधार पर उनकी जीवन—दृष्टि का परिचय दीजिए।

..........................................................................................................................................

..........................................................................................................................................

..................................................................................................................................

14. 'सन्नाटा' कविता में निहित कवि की प्रेम चेतना पर विचार कीजिए।

..........................................................................................................................................

..........................................................................................................................................

..................................................................................................................................

15. अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र के प्रकृति चित्रण का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

..........................................................................................................................................
..........................................................................................................................................
..................................................................................................................................

16. अज्ञेय और भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य–भाषा और शैली में निहित अंतर स्पष्ट कीजिए।

..........................................................................................................................................
..........................................................................................................................................
..................................................................................................................................

# इकाई 18 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

**इकाई की रूपरेखा**


18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 रघुवीर सहाय की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

18.2.1 रघुवीर सहाय का कवि परिचय

18.2.2 'राष्ट्रगीत' कविता का वाचन और विश्लेषण

18.2.3 'पढ़िए गीता' कविता का वाचन और विश्लेषण

18.2.4 'रामदास' कविता का वाचन और विश्लेषण

18.2.5 'प्रतीक्षा' कविता का वाचन और विश्लेषण

**18.3** सर्वेश्वर दयाल सिंह की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

18.3.1 सर्वेश्वर दयाल सिंह का कवि परिचय

18.3.2 'तुम्हारे साथ रहकर' कविता का वाचन और विश्लेषण

18.3.3 'मेघ आए' कविता का वाचन और विश्लेषण

18.3.4 'मैंने कब कहा' कविता का वाचन और विश्लेषण

18.3.5 'हम साथ ले चलेंगे ' कविता का वाचन और विश्लेषण

18.5 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर


## 18.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई पढ़ने के बाद आप :

- रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं से परिचित हो सकेंगें/ सकेंगी;
- रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में प्रकृति के स्वरूप के बारे में बता सकेंगे/सकेंगी;
- इन कवियों की कविताओं में निहित चिंता और चेतनाओं की चर्चा कर सकेंगे/सकेंगी;
- उल्लिखित कवियों की कविताओं में निहित काव्य सौंदर्य को उजागर कर पाएँगे/पाएँगी;
- तीनों कवियों की भाषिक और शैली संबंधी विशेषताओं को उद्घाटित कर सकेंगी/सकेंगे;
- रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की जीवन दृष्टि से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।

## 18.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पहले आपने अज्ञेय और भवानी भाई की कविताओं में निहित चिंताओं और सरोकारों को भली–भाँति जान लिया होगा। प्रस्तुत इकाई में आप रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की चार–चार कविताओं के आधार पर उनके कवि–कर्म से परिचित होंगे। आप यह भी परिलक्षित करेंगे कि एक ही समय में कविता रचने वाले कवियों की दृष्टि में कितना अंतर होता है।

## 18.2 रघुवीर सहाय की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

अब हम रघुवीर सहाय की चयनित कविताओं का अध्ययन करेंगे।

### 18.2.1 रघुवीर सहाय का कवि परिचय

**रघुवीर सहाय (1929–1990)** : अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' (1951) के कवि रघुवीर सहाय ने कविता के अलावा कहानी, निबंध, पत्रकारिता, अनुवाद आदि क्षेत्रों में भी लेखन किया है। लेकिन उनके कवि रूप की ही सर्वाधिक चर्चा होती है। यद्यपि कवि 'दूसरे सप्तक' यानी नयी कविता के दौर में कविता के संसार में जाने माने नाम के रूप में पहचाने जाते हैं तथापि उनकी कविताओं का स्वर अस्तित्ववाद और क्षणवाद से भिन्न है। बल्कि यूँ कहा जा सकता है कि इन सिद्धांतों का पुरजोर विरोधी स्वर है। उसे अपने पहले कविता संग्रह में ही अस्तित्ववाद से प्रभावित कवियों के दुःखवाद पर चोट की है। रघुवीर सहाय समकालीन कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनके कविता संग्रहों के नाम हैं–'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरुद्ध' और 'हँसो हँसो जल्दी हँसो'। वे 'प्रतीक', 'दिनमान' आदि पत्रिकाओं के संपादन से जुड़े रहे। साठोत्तरी भारत के जीवन यथार्थ को उनकी कविताएँ रूपायित करती हैं। समतामूलक समाज की स्थापना से प्रेरित भी प्रतीत होती हैं। रघुवीर सहाय की प्रेम और प्रकृति संबंधी कविताओं में भी अतिरिक्त रोमानियत परिलक्षित नहीं होती है। कवि का दूसरा संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' अकविता काव्य आंदोलन की प्रतिक्रिया में रचित है। बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों और नेहरू युग से मोहभंग को उकेरने में कवि को विशेष सफलता हासिल हुई है। इसमें कवि की राजनीतिक चेतना अत्यंत मुखर रूप में व्यंजित हुई है। साधारण जन को कई–कई रूपों में संवेदनात्मक धरातल पर चित्रित करना उसके कवि–कर्म का एक ध्येय रहा है। विसंगतियों और विडंबनाओं का शब्द चित्र निर्मित करने में भी कवि को विशिष्ट रूप से स्मरण किया जा सकता है। अपने समकालीन कवियों से सहाय की शब्दावली और उनका प्रयोग–कौशल, शिल्पगत अनन्यता होने के कारण उनकी कविताएँ अलग से रेखांकित की जा सकती हैं। 'लोग भूल गए हैं' कविता संग्रह पर इस कवि को 1984 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार से अलंकृत किया गया था।

आइए, आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित रघुवीर सहाय की 'राष्ट्रगीत','पढ़िए गीता', 'रामदास' और 'प्रतीक्षा' शीर्षक कविताओं का वाचन करें। कविता के सही–सही वाचन से आपको उसके अर्थ और उसकी मूल चिंता और संवेदना का परिचय प्राप्त हो जाना चाहिए। फिर भी प्रत्येक कविता की पदानुसार व्याख्या आपके लिए प्रस्तुत है। अतः व्याख्या खंड को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

### 18.2.2 'राष्ट्रगीत' कविता का वाचन और विश्लेषण

राष्ट्रगीत में भला कौन वह

भारत–भाग्य–विधाता है

फटा सुथन्ना पहने जिसका

गुन हरचरना गाता है.

मखमल टमटम बल्लम तुरही
पगड़ी छत्र चंवर के साथ
तोप छुड़ाकर ढोल बजाकर
जय–जय कौन कराता है.

पूरब–पश्चिम से आते हैं
नंगे–बुचे नरकंकाल
सिंहासन पर बैठा,
उनके
तमगे कौन लगाता है.

कौन–कौन है वह जन–गण–मन
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन बेमन जिसका
बाजा रोज बजाता है

यह कविता एक दूसरे शीर्षक 'अधिनायक' के साथ भी है। इस कविता में कवि का सत्ताधारी वर्ग के प्रति तीव्र कटाक्ष और व्यंग्य है। आजादी के पचहत्तर वर्ष बीतने को है लेकिन आम जनता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। आजादी राजनेताओं की मुट्ठी में सीमित होकर रह गई है। सारा सुख, वैभव, भोग–विलास राजनेता और पूँजीपति के लिए सुरक्षित कर दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में रघुवीर सहाय की 'राष्ट्रगीत' कविता का पाठ जरूरी हो जाता है। आइए, इस कविता का पाठ फिर से करें और इसके पदों की व्याख्या के माध्यम से कवि की चिंता और उसके सरोकार को समझने का प्रयास करें।

व्याख्या :

**राष्ट्रगीत में भला —————— कौन कराता है।**

उपर्युक्त कवितांश रघुवीर सहाय की कविता 'राष्ट्रगीत' से अवतरित है। इन पंक्तियों में कवि ने अधिनायक को लेकर व्यंग्यात्मक कटाक्ष किया है। राष्ट्रगीत में एक पंक्ति है 'जन–गण–मंगल–दायक जय हे भारत भाग्य विधाता।' इसका अर्थ है कि जन–गण के मंगल करने वाले भारत के भाग्य विधाता की जय हो।

कवि की जिज्ञासा भारत के भाग्य विधाता को ढूँढ रही है। वह पूछता है कि राष्ट्रगीत में उल्लिखित आख़िर वह 'भारत भाग्यविधाता' है कौन? वह कौन है जिसके प्रतिनिधित्व में भारत राष्ट्र का संचालन हो रहा है? वह अधिनायक कौन है जिसका गुणगान गरीब लड़का हरचरना फटी–पुरानी,

ढीली–ढाली हाफ पैंट पहने करता है? क्या हरचरना को राष्ट्रगान का महत्व भी भली–भाँति पता है?

कौन है जो मख़मल टमटम वल्लभ तुरही के साथ माथे पर पगड़ी एवं चंवर के साथ तोपों की सलामी लेकर ढोल बजवा कर अपना जयकारा लगवा रहा है? सत्ताधारी वर्ग परिवर्तित जनतांत्रिक व्यवस्था में राजसी ठाट–बाट के साथ इस उत्सव में शामिल होकर अधिनायक के रूप में अपना गुणगान करवा रहे हैं। कवि की जिज्ञासा है कि उस सिंहासन यानी मंच पर बैठा आदमी है कौन? मंच पर आसीन उस व्यक्ति को क्यों दूर–दूर से नंगे पैर एवं नरकंकाल बन चुके दुबले–पतले लोग आकर अधिनायक को तमगे और मालाएँ पहना रहे हैं? महाबली के डरे हुए लोगों से अपना गुणगान बाजा बजवाकर करवाने वाला व्यक्ति तानाशाह तो नहीं है? भूखी–प्यासी जनता का यह यशगान प्रायोजित तो नहीं है? आम आदमी का मसीहा बना हुआ यह अधिनायक क्या वास्तव में भारत भाग्यविधाता है अथवा तानाशाह? इस प्रकार के तमाम प्रश्न कविता से गुजर कर पाठकों के समक्ष खड़े हो जाते हैं। कवि ने आज के जनप्रतिनिधियों पर जबरदस्त व्यंग्य किया है। ये भारत के भाग्यविधाता तो नहीं हो सकते जिन्हें अपने देश और जनता की परवाह नहीं होती।

**पूरब पश्चिम से आते ———————— बाजा रोज बजाता है।**

कवि रघुवीर सहाय ने कहा है कि राष्ट्रीय त्योहारों के अवसर पर सभी दिशाओं से नंगे पैर जनता आती है और उसमें शामिल होती है। दूर–दूर से नंगे पैर एवं नरकंकाल बन चुके दुबले–पतले लोग आकर अधिनायक को तमगे और मालाएँ पहना रहे हैं। महाबली के डरे हुए लोगों से अपना गुणगान बाजा बजवाकर करवाने वाला भारत भाग्य विधाता तो नहीं तानाशाह अथवा अधिनायकतंत्र का प्रतीक है जो गरीब जनता की गाढ़ी कमाई पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने अथवा विदेशी बैंकों में अपनी पूँजी बढ़ाने में लगा रहता है। आम जनता के सामने अपनी देशभक्त वाली छवि बनाए रखने के लिए जनता के करोड़ों रुपए विज्ञापनों में लुटाता है। देश की आम जनता गरीबी की मार से मारी जा रही है लेकिन ये प्रतिनिधि राज सत्ता और राजकीय भोग–विलास में आकंठ डूबे रहते हैं।

जन–गण–मन का अधिनायक एक नहीं है अनेक हैं। तानाशाहों की संख्या दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। वे महाबली का रूप धारण कर देश की संपूर्ण शक्ति को अपनी मुट्ठी में दबाए रखते हैं। जनता में डर, भय और आतंक भरकर अपनी स्वार्थपूर्ति में लगे रहते हैं। आम जनता राष्ट्रभक्ति के इस नए रूप को देखकर दुखी है। इसलिए राष्ट्र गान और राष्ट्रीय उत्सव के महत्व को समझने की उसकी इच्छा और रुचि समाप्त होती जा रही है। उसे ये त्योहार औपचारिक लगते हैं। बस एक खाना–पूरी। ऐसा होना जनतंत्र के लिए गहरा संकट बन सकता है।

कवि ने जनतंत्र के नाम पर पनपती तानाशाही प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य किया है। सत्तासीन वर्ग के प्रति तीव्र आक्रोश और सर्वहारा लोगों और जनसाधारण के प्रति गहरी संवेदना अभिव्यक्त हुई है। कवि की पक्षधरता आमजन के साथ है। बोलचाल की शब्दावली का सुंदर प्रयोग किया गया है। यद्यपि कविता छोटे आकार की है परंतु इसमें आज की राजनीतिक विसंगतियों, कुरूपताओं और विद्रुपताओं का जीवंत चित्रण किया गया है।

## 18.2.3 'पढ़िए गीता' कविता का वाचन और विश्लेषण

बनिए सीता

फिर इन सब में लगा पलीता

किसी मूर्ख की हो परिणीता

निज घर–बार बसाइए ।

होंय कँटीली

आँखें गीली

लकड़ी सीली, तबियत ढीली

घर की सबसे बड़ी पतीली

भरकर भात पसाइए ।

रघुवीर सहाय की सर्वाधिक पढ़ी और उद्धृत की जाने वाली कविताओं में से 'पढ़िए गीता' अन्यतम है। यह मूलतः स्त्री संवेदना की कविता है। स्त्री के प्रति प्रचलित अवधारणा में निहित विरोधाभास को भी कविता में स्पष्ट देखा जा सकता है। इस कविता में कवि ने जहां एक ओर अपने युग का चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर इस कविता से उसकी स्त्री दृष्टि का भी परिचय मिलता है। इस कवि की कविताओं में बदलते समय की रेखाओं को अंकित किया गया है। इनमें जीवन और समाज के समक्ष उपस्थित जिन ख़तरों की ओर संकेत किया गया है,वे आज अधिक प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

**व्याख्या :**

**पढ़िए गीता ———————— निज घर–बार बसाइए।**

उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ सुप्रसिद्ध कवि रघुवीर सहाय की 'पढ़िए गीता' कविता से अवतरित हैं। इस अंश में गीता पढ़ने, सीता बनने का आग्रह है तो किसी मूर्ख की परिणीता बनने के लिए कहा गया है। 'श्रीमद्भागवतगीता' वह ग्रंथ है जिसमें युद्ध–विरत होने वाले को युद्ध के लिए प्रेरित किया गया था। जीवन एक युद्ध है और योद्धा की भाँति जीवन जीना चाहिए। जीवन से भागना कायरता है। कवि ने व्यंग्यात्मक लहजे में  समाज की समस्त स्त्री जाति से कहा है कि समाज 'गीता' पढ़ने के लिए हिदायत देता है। इस ग्रंथ में  धर्म और कर्म की शिक्षा मिलती है। लेकिन व्यावहारिक जीवन में समाज स्त्री को सीता ही बने रहने का आग्रह करता है। स्त्री की शिक्षा सैद्धांतिक रहे और यह कभी व्यावहारिक जीवन में लागू न हो। अर्थात् वह वही करे जो मर्दवादी व्यवस्था को पसंद आए। व्यावहारिक जीवन में उसकी प्राप्त शिक्षा का उपयोग न हो। वह बस त्याग की प्रतिमूर्ति, समर्पित और पुरुष की अनुगामिनी बनी रहे। यह समाज स्त्री जीवन की सार्थकता को उपर्युक्त गुणों के आधार पर ही परखता है। यानी समाज को एक ऐसी स्त्री चाहिए जो अपने कर्तव्य को भली भाँति जाने –समझे। अधिकार के लिए न लड़े। गीता का ज्ञान तो प्राप्त करे लेकिन उसे व्यावहारिक जीवन के धरातल पर उतारने की कोशिश न करे। सामाजिक यंत्रणा असह्य हो जाए तो सीता की तरह रसातल में  चली जाए। एक ऐसी स्त्री जो अपने अधिकार को भले समझे लेकिन बोले नहीं, मूक बनी रहे। वह उच्च शिक्षा प्राप्त होने पर भी मूक बनी रहे। वह अपनी समस्त प्रतिभा, बुद्धि आदि को परे धकेल कर चूल्हा– चौका  के  बर्तनों में पलीता लगाती रहे। वह घर–परिवार के झमेले में उलझी रहे। चूँकि वह स्त्री है वह पढ़ी–लिखी होने पर भी किसी मूर्ख की पत्नी बन सकती है क्योंकि हमारी सामाजिक व्यवस्था उसे उस रूप में देखना चाहती है।

समाज की सोच में निहित अंतर्विरोध स्पष्ट अनुमित है। इसे आप चाहें तो मर्दवादी सोच का षड्यंत्र भी कह सकते हैं। समाज में स्त्री की स्थिति से भी यह कविता साक्षात्कार कराती है।कवि ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोगकिया है। आम बोलचाल की शब्दावली का सुंदर प्रयोग किया।

**होंय कँटीली —————— भरकर भात पसाइए।**

कवि रघुवीर सहाय ने यहाँ समाज की स्त्री–दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि स्त्री अपनी घर–गृहस्थी को पूर्ण निष्ठा और समर्पण के साथ सम्हालती आ रही है। हृदय में अनेक कुंठाओं को दबाए घुटती रहती है। कभी–कभी उसकी कुंठाएँ काँटों की चुभन बनकर उनकी आँखों को भिंगो देती है। दिन–रात चूल्हा–चौका में समर्पित उसका जीवन की एकरसता में व्यतीत होता है। खाना पकाते हुए भिंगी लकड़ियों के कारण उसकी आँखें गीली रहती हैं। उसकी तबियत चाहे जितनी ख़राब हो वह घर की सबसे बड़ी पतीली में भर–भर कर भात पसाती रहती है। तात्पर्य यह कि पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री की यह छवि सदियों से कायम है।यह व्यवस्था स्त्री जीवन की इच्छाओं, कामनाओं और अभीप्साओं को दमित और कुंठित करती आ रही है। बावजूद इसके स्त्री अपनी गृहस्थी के लिए पूर्णतः समर्पित रहती है। इस कविता में समाज की मानसिकता में निहित अंतर्विरोध और विसंगतियों को उद्‌घाटित करने का भी सुंदर प्रयास हुआ है। इस कविता का सौंदर्य इसकी व्यंग्यात्मकता में निहित है। स्त्री चाहे कोई भी हो समाज को उसका 'सीता रूप' ही ग्राह्य होता आ रहा है।

रघुवीर सहाय की यह कविता सबसे अधिक लोकप्रिय है। यह कविता सर्वाधिक उद्धृत की जाती है। जनसामान्य तक इससे प्रभावित होते हैं क्योंकि यह सहज ही बोधगम्य है।

### 18.2.4 'रामदास कविता' का वाचन और विश्लेषण

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी

धीरे धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी

खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रख कर
सधे कदम रख कर के आए
लोग सिमट कर आँख गड़ाए
लगे देखने उसको जिसकी तय था हत्या होगी

निकल गली से तब हत्यारा

आया उसने नाम पुकारा

हाथ तौल कर चाकू मारा

छूटा लोहू का फव्वारा

कहा नहीं था उसने आख़िर उसकी

भीड़ ठेलकर लौट गया वह

मरा पड़ा है रामदास यह

देखो देखो बार बार कह

लोग निडर उस जगह खड़े रह

लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी।

रघुवीर सहाय की अत्यंत चर्चित कविताओं में से 'रामदास' उल्लेखनीय है। इस कवि की रचनाओं में लोकतांत्रिक व्यवस्था के नाम पर होने वाली अव्यवस्थाओं पर तीखा व्यंग्य है। जनतंत्र, न्याय, कार्यपालिका के छद्म चरित्र को उद्‌घाटित करने में कवि को विशेष सफलता हासिल है। कवि ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विडंबनाओं के कारण आम आदमी की असह्य जीवन–यंत्रणा को उजागर किया है।

**व्याख्या :**

**चौड़ी सड़क गली पतली ———————— उसकी हत्या होगी।**

कवि ने यहाँ एक आम आदमी रामदास की होने वाली हत्या के परिप्रेक्ष्य में उसकी मनःस्थिति तथा परिवेश का चित्रण किया है। साथ ही समाज में प्रचलित क़ानूनी दांव–पेंच से पीड़ित जनजीवन की शोचनीय स्थिति को भी उकेरा गया है।

यह कविता रामदास की लाचारी, विवशता एवं असहाय स्थितियों से रू–ब–रू कराती है। रामदास इस कविता का शीर्षक है और नायक भी। उसे धमकी दी गयी है कि आज उसकी हत्या होगी। यह जानकर रामदास उदास हो जाता है। कवि ने यहाँ कविता का आरंभ इस होने वाली दुर्घटना का परिवेश चित्रण के साथ प्रस्तुत किया है। उसने चौड़ी सड़क, पतली गली, दिन का समय और आकाश में छाए हुए बादल की सूचना दी है। घने बादलों से परिवेश में व्याप्त एक प्रकार की भयातुर स्थिति की ओर इशारा किया है। रामदास की निस्सहायता पूरे परिवेश में समाई हुई है। उसे पता है कि उसका अंत सन्निकट है। कोई भी क़ानून, संविधान अथवा प्रशासन उसकी हत्या रोक नहीं सकता है। हमारा क़ानून आम आदमी के लिए अंधा बना हुआ है। रामदास को अपने देश के क़ानून और न्यायिक प्रक्रिया के प्रति आस्था भी थी। लेकिन उसके अनुभवों ने उसे बता दिया है कि क़ानून के प्रति उसकी आस्था का कोई मतलब नहीं रह गया है। हमारी संपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक और न्यायिक व्यवस्था का प्रतिबिंब रामदास में अर्थात् उसकी मनःस्थितियों के माध्यम से स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

**धीरे–धीरे चला ————— उसकी हत्या होगी।**

कवि समाज की प्रतिक्रियाहीन मौन स्थिति पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि जो शोषण, अन्याय और अत्याचार को सहजता से तटस्थता के नाम पर मूकद्रष्टा बनकर मौन साढ़े रहता है वहाँ जीवन क़हाँ होता है। ऐसा समाज मृत कहलाता है।

रामदास को अपनी हत्या की खबर थी। लेकिन इसके बावजूद वह अकेला निहत्था निकल पड़ता है। भीतर से वह डरा हुआ था। वह किसी को अपने साथ ले लेना चाहता था। लेकिन उसने कुछ सोचकर वैसा नहीं किया। अकेले ही धीरे–धीरे चल पड़ा। उसने देखा कि सड़क पर बहुत सारे लोग थे। वे सभी निहत्थे और मौन थे। हालाँकि उनमें से हर व्यक्ति को रामदास की हत्या के बारे में मालूम था। लेकिन थे सभी मौन। ऐसी स्थिति में भारतीय संविधान में नागरिक को प्रदत्त सांविधानिक, लोकतांत्रिक और प्रशासनिक अधिकारों पर सवाल खड़ा होना लाजिमी है। सत्ता अपने को बिक चुकी हो तो व्यवस्था विवश ही होगी जैसे कि रामदास के लिए है। भीड़ में से कोई भी रामदास को बचाने की कोशिश नहीं करता है। इससे पता चलता है कि हमारी पूरी व्यवस्था कितनी पतनोन्मुखी हो चुकी है।

**खड़ा हुआ वह ————— तय था हत्या होगी।**

अवतरित अंश में कवि ने जनतंत्र, सत्ता और व्यवस्था का मखौल उड़ाने वाले तत्वों से हमें परिचित कराना चाहा है। रामदास अपने दोनों हाथ पेट पर रखे बीच सड़क पर खड़ा हो जाता है। वह बहुत सहमा हुआ है। बेहद सधे कदमों से वह यहाँ तक पहुँचा है। वहाँ उपस्थित सभी लोग भी सहमे हुए हैं। एक दूसरे में सिमटे हुए हैं। उन सबकी आँखें रामदास पर ही केंद्रित हैं क्योंकि सभी जानते हैं कि अब रामदास मारा जाएगा। लेकिन उनमें से किसी का साहस नहीं है कि इस हत्या को रोके। मानो वहाँ इकट्ठी हुई भीड़ चलचित्र के मूक दर्शक बने हुए हैं। किसी सनसनीख़ेज घटना के घटित होने की प्रतीक्षा में हैं। सड़क के बीचोंबीच खड़ा अकेला निहत्था, असहाय रामदास लोगों की तमाम जिज्ञासा, संशय, सवाल और उत्सुकता का केंद्र बना हुआ है। यह विडंबना ही है कि रामदास के रूप में एक जनतांत्रिक राष्ट्र में जनतंत्र के मुखिया द्वारा आम आदमी को ऐसी स्थिति में डालकर जनतंत्र का ही मखौल उड़ाया जा रहा है। रामदास की हत्या का आशय है कि जनतांत्रिक मूल्यों की हत्या है।

**निकल गली से तब हत्यारा ————— हत्या होगी।**

जनतंत्र की नृशंस हत्या, निरंकुश शासन और अराजकता भरे माहौल का चित्रण करते हुए कवि ने कहा है कि हत्यारा गली से निकल कर आता है और रामदास का नाम पुकारता है। नाम तथा व्यक्ति की पुष्टि हो जाती है तो अपने हाथ साधते हुए चाकू निशाने पर साधता है। रामदास के शरीर से लहू का फव्वारा छूटने लगता है। रामदास की हत्या हो जाती है। रामदास की मृत्यु के पश्चात भी, सब लोग बस खड़े होकर देखते रहें। मानो यह कोई खेल था, तमाशा था। हत्यारे के चेहरे पर विजय रेखा खिल जाती है। मानो वह वहाँ उपस्थित लोगों को समझा रहा हो कि मैंने तो कहा ही था कि उसकी हत्या होगी। असामाजिक तत्व, गुंडे, हत्यारे जब सत्तासीन होते हैं तब वे अपने पेशे वालों से सवाल पूछने वालों को बीच रास्ते में दिन दहाड़े मरवा देते हैं। वह हत्यारा रामदास की हत्या के बाद भीड़ को ठेलते हुए लौट जाता है और रामदास का मृत शरीर वहीं पड़ा रहता है। वहाँ उपस्थित लोगों के बीच हलचल होती है। वे एक–दूसरे को रामदास का मृत शरीर इशारे से दिखाते हैं। अब वे बिल्कुल निडर खड़े हैं और उन लोगों को घटना की व्याख्या करके समझा रहे हैं जिन्हें इस हत्या को लेकर कोई संशय था।

रामदास कविता में रोज–रोज मरते लोगों की भीड़ में एक जीते–जागते व्यक्ति की विडम्बना के साक्ष्य से इस कविता का गठन हुआ है। रामदास मृतप्राय आधुनिक समाज का ठोस यथार्थ है।

लोगों की तटस्थता और निरपेक्षता का भाव रामदास की हत्या के लिये जिम्मेदार है। मनुष्य कितना संवेदनहीन और निष्क्रिय हो गया है कि किसी की हत्या भी उसके लिए महज एक सूचना बनकर रह जाती है।

नयी कविता के अन्य कवियों की भाँति, रघुवीर सहाय ने प्रतीकों, बिम्बों और मिथकों का सहारा बहुत कम लिया है। इन्होंने साधारण बोलचाल की भाषा के अति–साधारण शब्दों का प्रायः गद्यवत प्रयोग ही अधिक किया है। रघुवीर सहाय की कविता कहने के एक खास ढंग को विकसित करती है। कविता में संवाद निरंतर चलता रहता है। इस संवाद के अंदर से ही कविता का जाल फैलकर विशिष्ट अर्थ को ग्रहण करता है।

### 18.2.5 'प्रतीक्षा' कविता का वाचन और विश्लेषण

दूसरे तीसरे जब इधर से निकलता हूँ

देखता हूँ, अरे, इस वर्ष गुलमोहर में अभी तक फूल नहीं आया

––इसी तरह आशा करते रहना कितना अच्छा है

विश्वास रहता है कि वह प्रज्वलित रूप

मैं भूल नहीं आया ।

––––––––––

**व्याख्या :**

**दूसरे तीसरे जब। –––––––––– मैं भूल नहीं आया।**

रघुवीर सहाय कविता लिखने के व्यक्तिगत प्रभावों की भी सफल अभिव्यक्ति करते हैं। उल्लेख किया जा चुका है कि कवि ने साधारण विषय और घटना को अनन्य ढंग से प्रस्तुत करने में सफलता हासिल की है। साधारण सी प्रतीत होने वाली घटना अथवा विषय में भी कवि की जीवन दृष्टि समाहित होती है। दरअसल जिन रचनाकारों के अपने जीवनानुभव होते हैं उस रचना का प्रभाव अधिक होता है। अपने में खोया हुआ रचनाकार और तमाम व्यस्तताओं में भी बाह्य जगत का साक्षात्कार करने और कराने वाले रचयिता की रचनाओं में अंतर आता है। रघुवीर सहाय की रचना में अंतः और बाह्य दोनों घुले–मिले रहते हैं। 'प्रतीक्षा' शीर्षक कविता इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। ।

यह कविता सीधी और सरल है। परंतु यह जीवन मूल्य से प्रेरित भी है। इसमें यथार्थ भी मौजूद है। यह बिल्कुल सत्य है कि कविता अकेले में ही सृजित होती है। कविता रचते समय कवि केवल उसी के साथ जीता है। उस समय वह बिल्कुल अकेला होता है, भले ही उसकी कविता में पूरा संसार समाया हो, पूरी दुनिया की चिन्ताएँ ओत–प्रोत हों। कवि को यह अकेलापन अन्य तमाम व्यस्तताओं के बीच भी मिल ही जाता है, भले ही वह उतनी देर के लिए औरों को अपने–आप में खोया–सा लगे। एकांत के क्षणों में वह बाह्य जगत को भुलाए नहीं बैठता है। गुलमोहर का अब तक नहीं खिलना कवि के अंतस में निराशा नहीं बल्कि आशा का भाव संचार करता है। गुलमोहर के धधकते रूप को बिना भुलाए आ जाने पर कवि को विश्वास होता है कि उसमें अब भी संवेदना जीवित है।

## 18.3 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

अब हम सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की चयनित कविताओं का अध्ययन करेंगे।

### 18.3.1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (1927–1983):

अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक'(1951) के कवियों में सर्वेश्वर का नाम उल्लेखनीय है। कवि की प्रारंभिक रचनाओं में अस्तित्ववाद और लोक तत्व दोनों का समानांतर प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'दिनमान' से जुड़ने के बाद उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र की चुनौतियों को भली–भाँति समझा। उन्होंने किसी भी भाषा के विकास के स्वरूप को जानने के लिए बाल–साहित्य के विकास को आधार माना और प्रभूत मात्रा में बाल–साहित्य का भी लेखन किया। काव्य के अतिरिक्त कथा, नाटक, यात्रा संस्मरण, संपादन, अनुवाद, लेख, फीचर आदि विधाओं में उल्लेखनीय सृजन किया है। सर्वेश्वर का 'बकरी' नाटक लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुका है। बहरहाल, यहाँ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के कवि रूप का उल्लेख करना हमारा उद्देश्य है। उनके कविता संग्रह हैं–काठ की घंटियाँ, बांस का फूल, एक सूनी नाव, गर्म हवाएँ, कुआनो नदी, जंगल का दर्द, खूँटियों पर टंगे लोग, क्या कह कर पुकारूँ, कविताएँ–1, कविताएँ–2, कोई मेरे साथ चले, मेघ आए, काला कोयल, शाम एक किसान। कहना न होगा कि सर्वेश्वर ने बड़ी मात्रा में कविताएँ लिखी हैं। 'कुआनो नदी' के प्रकाशन के साथ कवि की कविताओं में एक नया मोड़ दिखाई पड़ता है। यहाँ कवि की क्रांतिकारिता का स्पष्ट परिचय मिलता है। मानवीय गरिमा की रक्षा इस कवि की कविताओं का केंद्रीय मूल्य है। आम आदमी के प्रति कवि की प्रतिबद्धता स्पष्ट देखी जा सकती है। व्यक्ति के सुख–दुःख को बिना महत्व प्रदान किए समाज को सर्वोपरि मानना भी इन कविताओं की मूल चिंता है। 'दिनमान' में प्रकाशित 'चरचे और चरखे' स्तंभ के अंतर्गत आपके लेख विशेष लोकप्रिय रहे। सन 1983 में कविता संग्रह 'खूँटियों पर टंगे लोग' के लिए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

### 18.3.2 'तुम्हारे साथ रहकर' कविता का वाचन और विश्लेषण

तुम्हारे साथ रहकर
अक्सर मुझे ऐसा महसूस हुआ है
कि दिशाएँ पास आ गयी हैं,
हर रास्ता छोटा हो गया है,
दुनिया सिमटकर
एक आँगन–सी बन गयी है
जो खचाखच भरा है,
कहीं भी एकान्त नहीं
न बाहर, न भीतर।

हर चीज का आकार घट गया है,
पेड़ इतने छोटे हो गये हैं
कि मैं उनके शीश पर हाथ रख
आशीष दे सकता हूँ,
आकाश छाती से टकराता है,

मैं जब चाहूँ बादलों में मुँह छिपा सकता हूँ।

तुम्हारे साथ रहकर
अक्सर मुझे महसूस हुआ है
कि हर बात का एक मतलब होता है,
यहाँ तक कि घास के हिलने का भी,
हवा का खिड़की से आने का,
और धूप का दीवार पर
चढ़कर चले जाने का।

तुम्हारे साथ रहकर
अक्सर मुझे लगा है
कि हम असमर्थताओं से नहीं
सम्भावनाओं से घिरे हैं,
हर दीवार में द्वार बन सकता है
और हर द्वार से पूरा का पूरा
पहाड़ गुजर सकता है।

शक्ति अगर सीमित है
तो हर चीज अशक्त भी है,
भुजाएँ अगर छोटी हैं,
तो सागर भी सिमटा हुआ है,
सामर्थ्य केवल इच्छा का दूसरा नाम है,
जीवन और मृत्यु के बीच जो भूमि है
वह नियति की नहीं मेरी है।

'तुम्हारे साथ रहकर' शीर्षक कविता में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रेम चेतना और संवेदना अभिव्यक्त है। कवि के लिए प्रेमिका केवल प्रेम का आलंबन नहीं है। वह कवि की चेतना, शक्ति, सामर्थ्य और स्फूर्ति को उद्‌बुद्ध करती है। प्रेमिका का साहचर्य कवि में संभावनाओं के द्वार उन्मुक्त करने में समर्थ है तथा सामर्थ्य से भरपूर करने वाला होता है। कवि के अनुसार प्रियतमा का साथ हो तो जीवन सफल और सार्थक बन जाता है।कवि का मानना है कि प्रियतमा के साथ रहकर सारी नकारात्मकताएँ सकारात्मक सोच में बदल जाती हैं। इस कविता में कवि की जीवन दृष्टि में

प्रेम का महत्व सर्वाधिक रहा है। यह प्रेम देह की परिधि को पार करते हुए जीवन के मूलमंत्र के रूप में कविता में प्रस्तुत हुआ है।

**व्याख्या :**

**तुम्हारे साथ रहकर —————— न बाहर न भीतर।**

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की बहुचर्चित कविता 'तुम्हारे साथ रहकर' से अवतरित इस अंश में कवि ने अपनी प्रेमिका को संबोधित करते हुए कहा है कि तुम्हारे साथ रहते हुए यानी तुम्हारा साहचर्य पाकर अक्सर ही मुझे महसूस होता है कि दूर–दूर तक फैली हुई दिशाएँ बिल्कुल मेरे नजदीक आ गई हैं। पहले जो रास्ता लंबा और पथरीला लगता था अब वह छोटा और सहज लगने लगा है। आशय यह कि जीवन मार्ग की कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं। चुनौतियाँ और संघर्ष पहले की तुलना में बहुत सहज और आसान प्रतीत होने लगते हैं। ऐसा भी लगता है कि पूरी दुनिया मानो सिमटकर आँगन में आ गयी है यानी मेरी पहुँच में हो गयी है। यहाँ लोगों की भीड़ इतनी अधिक हो गयी है कि एकांत के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह गया है न बाहर न भीतर। तात्पर्य यह कि आज अजनबीयत, अकेलापन और ऊब से भरी यह विस्तृत दुनिया सिमटकर एक आँगन सी बन गयी है जहां चारों ओर अपने ही घर–परिवार के लोग, आत्मीय जन मौजूद हैं। उनकी आँखों में एक दूसरे के लिए प्रेम, भाईचारा, विश्वास, आत्मीयता के भाव झलक रहे हैं। इन भावों को महसूस करते हुए कवि का अंतः और बाह्य लबालब हो उठा है।

**हर चीज का —————— मुँह छिपा सकता हूँ।**

प्रेमिका का सान्निध्य कवि को अत्यंत सामर्थ्यशील बनाता है। वह अपने भीतर अद्भुत क्षमता को महसूस कर पाने में समर्थ होता है। प्रियतमा के साहचर्य ने कवि में इतनी ऊर्जा भर देता है कि उसे संसार की हर वस्तु आकार में छोटी दिखाई पड़ती है। उसके लिए विशालकाय वृक्ष भी छोटे प्रतीत होते हैं। इतने छोटे कि कवि उन पेड़ों पर हाथ रखकर आशीर्वाद दे सकता है। इतना ही नहीं, कवि की शक्ति इतनी व्यापक हो गयी है कि वह सर्वशक्तिमान की तरह आकाश से भी टकरा सकता है। प्रेयसी के संस्पर्श ने उसकी चेतना को झंकृत कर उसमें नवीन ज्ञान–विज्ञान और रहस्यों को जागृत करने में सफल रहा है। इससे उसकी चेतना आकाश तक व्याप्त हो गयी है। इसके तहत वह जब चाहे बादलों में अपना मुँह छिपाकर लुका–छिपी का खेल भी खेल भी खेल सकता है। प्रेयसी के संस्पर्श ने कवि में असंभावित को भी संभाव्य बनाया है।

**तुम्हारे साथ रहकर —————— चढ़कर चले जाने का।**

प्रेयसी के साथ रहते हुए कवि ने आस–पास की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियों को भी महसूस किया है। उसने प्रियतमा को संबोधित करते हुए कहा है – तुम्हारे साथ रहते हुए अक्सर मैंने महसूस किया है कि हमारी हर बात का एक मतलब होता है। एक निश्चित अर्थ होता है। इस पूरी प्रकृति में बिना कारण तथा मतलब के कोई भी क्रिया नहीं होती है। यहाँ तक कि अति उपेक्षित दिखने वाली घास के हिलने का भी कोई न कोई संकेत होता है। उसी तरह खिड़की से हवा का आना–जाना तथा दीवारों पर धूप का चढ़ना–उतरना भी बेवजह नहीं है। प्रकृति की यह स्वतःस्फूर्त क्रियाएँ ही जीवन को संचालित करती हैं। उसे अर्थवान बनाती हैं। कवि का आशय यह है कि प्रेयसी ने उसकी संवेदनाओं व भावनाओं को जागृत कर दिया है। इसके पहले कवि ने इन हलचलों को कभी महसूस नहीं किया था। प्रेम के सान्निध्य से कवि की भावुकता, आत्मीयता और सचेतनशीलता उद्दीप्त होती है। साथ ही कवि प्रकृति की विविध क्रियाओं को समझने की सूझ–बुझ भी प्राप्त करता है। प्रेमानुभूति की स्थिति में जड़ भी चेतनता को प्राप्त करता है।

**तुम्हारे साथ रहकर ———————— गुजर सकता है।**

प्रियतमा के साहचर्य से कवि में अपार संभावनाएँ भर देता है। निराशा के भाव छँटने लगते हैं। उम्मीदें और संभावनाएँ पनपने लगती हैं। कवि का कहना है कि प्रेमिका का साथ हो तो तमाम असमर्थताएँ संभावनाओं में तब्दील हो जाती हैं। नई स्फूर्ति, उत्साह तथा साहस का संचार होता है। हर दीवार में दरवाजा हो सकता है और उस दरवाजे से पूरा का पूरा पहाड़ गुजर सकता है। तात्पर्य यह कि तमाम मुसीबतें, बाधाएँ, आदि संभावना रूपी दरवाजे से दूर हो सकती हैं। साहचर्य अनंत शक्तियों से समृद्ध करता है। असंभव को भी संभव बना देता है। कवि की जीवन–दृष्टि का सुंदर परिचय इस पद्यांश से प्राप्त होता है।

**शक्ति अगर सीमित ———————— नियति की नहीं मेरी है।**

कवि का सामर्थ्य इच्छा–शक्ति के साथ मिलकर व्यापक रूप धारण कर लेता है। वह अनंत संभावनाओं का स्रोत अपने में महसूस करने लगता है। प्रियतमा के संग–साथ ने कवि में अद्‌भुत इच्छा–शक्ति उत्पन्न की है। उनका सामर्थ्य अनंत संभावनाओं के साथ पूरी सृष्टि को अपनी भुजाओं में बांध लेने को आतुर है। कवि को अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। इस संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे मनुष्य नहीं कर सकता है। जीवन में आनेवाली कठिनाइयाँ कभी भी मनुष्य के सामर्थ्य को पराजित नहीं कर सकती हैं। मनुष्य यदि चाहे तो वह सब कुछ कर सकता है। उसमें अनंत शक्तियों के स्रोत प्रवाहित होते हैं। संपूर्ण ब्रह्मांड उसके समक्ष लघु प्रतीत होता है। यदि मनुष्य की शक्ति सीमित है तो प्रकृति का कठोर से कठोर तत्व भी अशक्त हो जाता है। उसकी भुजाओं का प्रसार जहां थम जाता है विशाल और अथाह सागर भी सिमटना आरंभ कर देता है। मनुष्य की इच्छा ही सामर्थ्य को जन्म देती है। इच्छा–शक्ति के बल पर ही मनुष्य संपूर्ण ब्रह्मांड को अपनी मुट्ठी में समाए रखने में समर्थ हुआ है। ज्ञान–विज्ञान की विविध परतों को उघाड़ कर रहस्यों का खुलासा करने में सफल रहा है। मानव जीवन में जीवन और मृत्यु के बीच जो कर्मभूमि है वह नियति द्वारा निर्धारित नहीं है, बल्कि मनुष्य द्वारा निर्मित है। उसका कर्म ही उसके जीवन को दिशा प्रदान करता है। भावार्थ यह है कि कवि को मनुष्य की शक्ति पर अगाध विश्वास है। कर्मवाद में उसका अपार विश्वास है। नियति और भाग्य को ठुकराया गया है।

### 18.3.3 'मेघ आए' कविता का वाचन और विश्लेषण

मेघ आए बड़े बन–ठन के सँवर के।

आगे–आगे नाचती–गाती बयार चली

दरवाजे–खिड़कियाँ खुलने लगी गली–गली

पाहन ज्यों आए हो गाँव में शहर के।

पेड़ झुक झांकने लगे गरदन उचकाए

आँधी चली, धूल भागी घाघरा उठाए

बाँकी चितवन उठा नदी, ठिठकी, घूँघट सरके।

बूढ़े पीपल ने आगे बढ़ कर जुहार की

बरस बाद सुधी लीन्ही

बोली अकुलाई लता ओट हो किवार की

हरसाया ताल लाया पानी परात भर के।

क्षितिज अटारी गदराईदामिनी दमकी

क्षमा करो गाँठ खुल गयी अब भरम की

बांध टूटा झर–झर मिलन अश्रु ढरके

मेघ आए बड़े बन–ठन के, सँवर के

'मेघ आए' कविता में बादलों के आने की तुलना सजे–संवरे आए हुए प्रवासी अतिथि दामाद से की गयी है। ग्रामीण संस्कृति में दामाद का ससुराल में आना किसी उत्सव से कम नहीं होता है। दामाद का जिस प्रकार अतिथि–सत्कार होता है ठीक उसी तरह मेघों के आने पर गाँव वाले हर्ष और उल्लास से भरकर उनका स्वागत करते हैं। कवि ने इसका मनोरम चित्रण किया है।

**व्याख्या :**

**मेघ आए ———————— घूँघट सरके।**

इन पंक्तियों में कवि कहता है कि आकाश में बादल घिर आए हैं। बादलों को देखकर ऐसा लगता है कि कोई मेहमान शहर से सज–धज कर गाँव आ पहुँचे हैं। भारतीय संस्कृति में 'अतिथि देवों भव' का बड़ा महत्व है। अतिथि को देवता तुल्य माना जाता है। इसलिए गाँव में आए हुए इस अतिथि देवता के दर्शन करके गाँव वाले अतीव प्रसन्न हैं। अतिथि भी ऐसे हैं कि साल भर में एक–आध बार ही आते हैं। ऐसे अतिथियों का ख़ास स्वागत होता है। बादल भी सालभर के पश्चात पधारे हैं। बादलों के पहुँचने के पहले उनके आगमन की सूचना पुरवाई नाचते–गाते पूरे गाँव में प्रचारित कर देती है। पुरवाई के नाच–गान को देखने–सुनने के लिए खिड़की और दरवाजे खुलने लगते हैं। पुनः गाँव के लोग मेघरूपी दामाद को देखने के लिए खड़े रहते हैं। उल्लेख किया जा सकता है दामाद किसी परिवार का भले हो लेकिन पूरे गाँव के लोग उसे अपना दामाद मानते और समझते हैं। यानी दामाद किसी परिवार का ही नहीं बल्कि पूरे गाँव का होता है। बहरहाल, मेघों के आने पर पूरा गाँव, हवा और प्रकृति में उमंग, उत्साह और उल्लास भर जाता है।

अतिथि के आने पर जिस प्रकार लोग झुककर अभिवादन करते हैं और उनका कुशलक्षेम पूछते हैं ठीक उसी प्रकार बादलों को देखकर पेड़ हवा से पहले झुकते हैं और फिर आनंदित होकर डोलने लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए ग्रामीण अतिथि को देख रहे हैं। धीरे–धीरे हवा आँधी में बदल गयी और धूल उड़ने लगी। धूल का गुब्बारा देखकर ऐसा लगता है जैसे कोई ग्राम की युवती किसी अनजाने व्यक्ति को देखकर अपना लहंगा समेटकर भागी चली जा रही है। बादलों का घिरना नदी के लिए भी शुभ समाचार है। वह भी थोड़ी देर के लिए ठहर कर घूँघट में से वंकिम नयनों में बादलों को निहारने लगती है।

**बूढ़े पीपल ———————— सँवर के।**

इन पंक्तियों में कवि का कहना है कि जिस प्रकार मेहमान के आगमन पर घर के वयोज्येष्ठ उनका स्वागत करते हैं, अभिवादन करते हैं, घर की बाहुएँ किवाड़ या दरवाजे की ओर में से उनसे स्नेहभरे संभाषण करती हैं अथवा लंबे अरसे से आने के लिए स्नेहपूर्ण शिकायत करती हैं उसी प्रकार मेघ रूपी अतिथि के आगमन पर बूढ़े पीपल ने स्वागत और अभिवादन किया। हवा के झोंकों से लताएँ लहराती रहीं। मानो वे शिकायत कर रही हैं कि आप लंबे अंतराल के बाद पधारे हैं।

पोखर–तालाब हर्षातिरेक में झूम रहे हैं मानो अतिथि के स्वागत हेतु परात भर के पानी ले आए हैं। मेघों के आने पर प्रकृति में प्रसारित हर्ष और उल्लास के वातावरण का जीवंत चित्रण किया गया है।

आकाश में बादल छा गए हैं। क्षितिज पर गहरे बादलों में बिजली चमकी और वर्षा शुरू हो गयी। झर–झर वर्षा होने लगी। इस भाव को कवि ने मेहमान और उसकी पत्नी के मिलन के रूप में चित्रित किया है। पति –पत्नी का मिलन हुआ। दोनों के मन की गाँठें खुल गयीं। सारे भेद मिट गए। दुविधाएँ दूर हो गयीं। ऐसी स्थिति में विरह का बांध टूट गया। इसी प्रकार अतिथि के आने के पश्चात की खुशी और मिलन के आंसू के रूप में वर्षा का सुंदर चित्रण किया गया है।

भारत एक कृषिप्रधान देश है। कृषि कार्य वर्षा पर आश्रित है। कृषकों की खुशियाँ, उनकी मनोकामनाएँ, उनका जीवन सब कुछ बरसात पर निर्भर है। इस संदर्भ में आप सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविता 'बादल राग' पढ़ सकते हैं। बहरहाल आपने ध्यान दिया होगा कि इस कविता में कवि ने रूपक और मानवीकरण अलंकारों का कितना सुंदर प्रयोग किया है। जैसे, 'बोली सकुचाई लता', ''आगे–आगे नाचती चली बयार', 'बूढ़े पीपल ने आगे बढ़कर जुहार की', 'पेड़ झुक झांकने लगे गरदन उचकाए' में मानवीकरण अलंकार का प्रयोग हुआ है। इसी तरह 'क्षितिज अटारी', 'बांध टूटा झर–झर मिलन के अश्रु ढरके', आदि में रूपक अलंकार है। पुनः कविता में सुधी लेना, बन–ठन के, बांध टूटना, गाँठ खुलना आदि मुहावरों के प्रयोग से कवि की अभिव्यक्ति सशक्त हुई है।

### 18.3.4 'मैंने कब कहा' कविता का वाचन और विश्लेषण

मैंने कब कहा  
कोई मेरे साथ चले  
चाहा जरूर !

अक्सर दरख़्तों के लिए  
जूते सिलवा लाया  
और उसके पास खड़ा रहा  
वे अपनी हरियाली  
अपने फूल फूल पर इतराते  
अपनी चिड़ियों में उलझे रहे

मैं आगे बढ़ गया  
अपने पैरों को  
उनकी तरह  
जड़ में नहीं बदल पाया

यह जानते हुए भी

कि आगे बढ़ना

निरंतर कुछ खोते जाना

और अकेले होते जाना है

मैं यहाँ तक आ गया हूँ

जहां दरख़्तों की लंबी छायाएँ

मुझे घेरे हुए हैं ..........

किसी साथ के

या डूबते सूरज के कारण

मुझे नहीं मालूम

मुझे

और आगे जाना है

कोई मेरे साथ चले

मैंने कब कहा

चाहा जरूर !

साठोत्तरी दौर के कवियों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अपने युग की चुनौतियों से जूझने वाले कवि के रूप में जाने जाते हैं। वे एक संघर्षशील कवि हैं। उनकी कविताओं में सामाजिक विसंगतियों, राजनीतिक आतंक, आर्थिक वैषम्य और धार्मिक पाखंडों का निषेध है। उन्हें पता है कि व्यापक जीवन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जनसमूह का सहयोग और योगदान बहुत आवश्यक है। उनकी चाहत है कि समाज का उन्हें सहयोग प्राप्त हो। लेकिन इसके लिए वे प्रतीक्षा करना नहीं चाहते बल्कि पूरे आत्मविश्वास, निष्ठा और संकल्प शक्ति के साथ आगे बढ़ना पसंद करते हैं। स्मरण कीजिए, रवींद्रनाथ ठाकुर ने लिखा है 'यदि तोर डाक सूने केउ ना आसे तोबे एकला चलो रे।' अर्थात, यदि तुम्हारी पुकार सुनकर कोई न आए तो तुम अकेले चल पड़ो।'मैंने कब कहा' कविता की भाषा सरल एवं बोलचाल की भाषा है। इसकी शैली संवादात्मक है।

**व्याख्या :**

**मैंने कब कहा —————— जड़ में नहीं बदल पाया।**

सामाजिक उत्थान के अभियान में पूरे समाज को साथ लेकर चलने का प्रयास हो तो वह सफल होता है। अपने व्यापक लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए कवि चाहता तो है कि समाज के सभी वर्गों के लोग इसमें शामिल हों लेकिन, वह किसी को भी अपने साथ चलने के लिए नहीं कहता। यह इसलिए कि स्वतःस्फूर्त होकर आने वाले ही कठिन मार्ग के राही हो सकते हैं।

समाज में एक वर्ग ऐसा है जो विशिष्ट है, अनुभवी भी। उनमें सामाजिक नेतृत्व की अद्‌भुत क्षमता भी है। परंतु वे अपने जीवन में समृद्धि के लिए ही उलझे रहते हैं। घर–परिवार और आत्मीय लोगों की उपलब्धियों को अपना जीवन वैभव मानकर गौरवान्वित होते हैं। इसे ही जीवन का लक्ष्य मानकर चलते हैं। ऐसे लोगों को अपने निजी जीवन में सिमटे हुए देखकर कवि ने 'अपनी हरियाली' और 'फूल– फूल पर इतराते' की तुलना की है। ऐसी स्थिति में वह निराश हो आगे बढ़ जाता है। उन लोगों की तरह कवि अपने पैरों को जड़ यानी पुरानी सोच में सिमटाए बिना आगे बढ़ना उचित समझता है। आगे बढ़ना गतिशीलता है और पैरों को जड़ बनाए रखना स्थिरता है, जड़ता है। ऐसे भद्र लोगों की प्रतीक्षा कवि करना नहीं चाहता है। इसलिए व्यापक सामाजिक लक्ष्य हेतु आगे बढ़ना उचित समझता है। कवि की संकल्प शक्ति उसे संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। कवि को अपने व्यापक लक्ष्य की पूर्ति के लिए समाज के जिन जिम्मेदार तथाकथित भद्र लोगों का सहयोग काम्य था वे अपनी जड़ता में लिप्त हैं। वे अपने निजी स्वार्थ से रची–बसी सीमित दुनिया के बाहर आना नहीं चाहते हैं। वे उस संसार में ही खुश हैं और परम प्रसन्न। दरअसल, यह उनकी जड़ मानसिकता है। कवि की चेतनशील जीवन दृष्टि ने उसके पैरों को जड़ता से मुक्त किया है। इसलिए वह उन प्रतिष्ठित लोगों की प्रतीक्षा किए बिना आगे बढ़ता है। भले ही, सामाजिकों के असहयोग से उसे निराशा हुई है।

**यह जानते हुए भी —————— चाहा जरूर।**

प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि का जीवन दर्शन पाठकों के समक्ष उजागर होता है। उसका कहना है कि मनुष्य अपनी संकल्प शक्ति को आधार बना कर जितना आगे बढ़ता है उतना अकेला पड़ता जाता है और अपना बहुत कुछ खोता भी जाता है। लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग कठिन होता है। इस मार्ग के राही को अपने वैयक्तिक सुख– सुविधाओं को तिलांजलि देनी पड़ती है। अनेक तरह के प्रतिरोधों का सामना करना पड़ता है। व्यंग्य तथा आक्षेपों को भी सहना पड़ता है। कवि का कहना है कि वह आगे बढ़ते हुए वहाँ पहुँच गया है जहां 'दरख़्तों' के रूप में वृक्षों की लंबी छाया उसे घेरे खड़ी है। उसे मालूम है कि आज उसके साथ तथाकथित सामाजिकों का साथ होने का केवल भ्रम मात्र है। लेकिन उसे रुकना नहीं है, आगे बढ़ना है। चाहे कोई कवि का साथ दे अथवा नहीं, उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आगे बढ़ना है। उसे अपने अभियान में किसी के संग–साथ की उम्मीद हो अथवा ढलते जीवन–चक्र की संपूर्णता का सुखद अहसास। कवि निश्चित नहीं कर पाता है कि उसे और कितना आगे चलना है। लेकिन, उसकी संकल्पबद्धता सुदृढ़ है। वह हर परिस्थिति में अपने मार्ग पर चलते रहने के लिए कटिबद्ध है। कवि की इच्छा अवश्य है कि उसकी संघर्ष यात्रा के साथी समाज के सभी वर्ग के लोग बनें लेकिन उसने यह उचित नहीं समझा है कि उनकी प्रतीक्षा में वह स्वयं जड़ बन जाए।

## 18.3.5 'हम साथ ले चलेंगे' कविता का वाचन और विश्लेषण

आपने रघुवीर सहाय की कविताओं में निहित राजनीतिक चेतना के बारे में पढ़ लिया होगा। उनकी 'राष्ट्रगीत' अथवा 'रामदास' कविताओं में राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। 'हम साथ ले चलेंगे' शीर्षक कविता भी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की राजनीतिक चेतना प्रस्तुत करती है। आपने सर्वेश्वर को प्रेम, प्रकृति, पर्यावरण, आदि संवेदनाओं के कवि के रूप में इस इकाई में पढ़ चुके हैं। लेकिन इस कविता में कवि की भिन्न संवेदना से आप रू–ब–रू हो सकेंगे।

आप जानते हैं कि हमारे देश की आजादी के इतने वर्ष बाद भी हम अपनी आधारभूत सुविधाओं से वंचित हैं। देश में विकास का डंका तो खूब बज रहा है लेकिन असली विकास चंद लोगों के कब्जे में है। प्रति पाँच वर्ष के अंतराल में राजनेता नागरिकों को लुभाने के लिए मंचों से बड़े लुभावने वायदे करते हैं। लेकिन जैसे ही चुनाव संपन्न हो जाता है, वे जनता को दिखाए गए सपने और उनके समक्ष की गई प्रतिज्ञाओं को भुला बैठते हैं। वे जुट जाते हैं अपने और अपने परिवार के

विकास के लिए। देश में प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था पर कुठाराघात करते हुए कवि ने 'हम साथ ले चलेंगे' की रचना की है। इस कविता की शैली व्यंग्यात्मक है। सत्ता पर आरूढ़ राजनेताओं पर कवि का आक्रोश भी इस कविता में स्पष्ट परिलक्षित होता है। सत्ता और व्यवस्था के दमन, शोषण, अत्याचार, स्वार्थपरता, चालाकियाँ और वीभत्स रूप को भी जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। नेताओं के दोगलेपन, कथनी और करनी में अंतर आदि को भी कवि ने नहीं भुलाया है।

सच है कि भारत एक जनतांत्रिक राष्ट्र है और इसका अपना संविधान भी है। लेकिन, हक़ीक़त कुछ और है। राजनीति ही नहीं, हमारी व्यवस्था भी भ्रष्ट हो चुकी है। मुट्ठीभर लोगों के हाथ सत्ता और तमाम सुख–सुविधाएँ हैं। देश में दिनोदिन गरीबी बढ़ती जा रही है। बेरोजगारी चरम पर है। आम जनता पीड़ित है। सत्तासीन निश्चिंत हैं।

आपने बस–अड्डे, रेलवे स्टेशन आदि स्थानों में सामान ढोने वाले कुलियों को देखा होगा। ये लोग बड़े अनुनय–विनय के साथ आपके सामान आपके गंतव्य तक पहुँचा देने का वादा करते हैं। इसी तरह चुनावी मौसम में राजनेता मंचों से खूब चिकनी–चुपड़ी बातें करते हैं और वादा करते हैं कि यदि वे विजयी हुए तो जनता की सारी समस्याओं का समाधान कर देंगे। वस्तुस्थिति यह है कि अगले चुनाव तक जनता उनके दर्शन के लिए तरसती रहती है। कुली सामान गंतव्य तक पहुँचाने के बाद किराए को लेकर कहा–सुनी करता है। लेकिन नेता विजयी हो जाने के बाद जनता की तरफ मुंह उठाकर देखना भी मुनासिब नहीं समझता। कुली मुसाफिर को कभी–कभी ठग लेते हैं। सामान लेकर भीड़ में कहीं गायब हो जाते हैं। ऐसे कुली संख्या में कम हैं। लेकिन राजनेता ईमानदार कम ही मिलते हैं। जो राजनेता सच्चा, ईमानदार और जनता का सही अर्थ में सेवक होते हैं, हमारी व्यवस्था उन्हें कुचल कर ही रख देती है। कुली और राजनेता को समान धरातल पर खड़ा करते हुए कवि ने राजनीतिक व्यवस्था पर गहरा आक्रोश व्यक्त किया है।

कवि ने आगे कहा है कि कुछ कुली इतने चालाक और धूर्त होते हैं कि यात्री का सामान अपने सिर से गायब कर देते हैं अथवा सामान सहित कहीं गायब हो जाते हैं जबकि उन्होंने यात्री का सामान सही सलामत पहुँचाने का वादा किया था। इसी तरह राजनेता मंच से जनकल्याण, सामूहिक विकास आदि का दावा करने वाले जनता के सवालों तक का जवाब नहीं देते। अपना कल्याण और अपनी समृद्धि ही उनके लिए सर्वोपरि है। जनता की समस्या को सुलझाने में कोई दिलचस्पी नहीं लेते। हाँ, झूठे वादे करने में वे पीछे नहीं रहते। लोगों को भरमाए और भटकाए रखते हैं।

आजादी के लगभग पचहत्तर साल में भी देश कभी अकालपीड़ित रहता है तो कभी सूखे के प्रभाव से तड़पता रहता है। कीड़े–मकौड़े की तरह लोग मरने लगते हैं। गाँव का गाँव उजड़ जाता है। कवि ने इस कविता में बड़े प्रभावशाली ढंग से चित्रित करते हुए लिखा है कि जिस तरह किसी अकाल और सूखे से बर्बाद हो चुके गाँव की सीमा पर एक कुत्ता भूख और प्यास से दम तोड़ देता है, ठीक उसी तरह भारतीय समाज व्यवस्था में जनता के सवाल और उनकी समस्याएं न केवल उपेक्षित हैं बल्कि वे काल–कवलित हो रहे हैं। जो हश्र लावारिस कुत्ते का होता है वैसी दशा जनता की समस्याओं की होती है। जनता के सवालों से कोई मतलब ही नहीं रह गया है हमारी राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था में सत्ता से सवाल करने का मतलब कुछ और बन गया है। प्रश्न पूछा गया अथवा समस्याएँ सामने लायी गयीं तो सत्ता इसका अर्थ समझती है कि आप पवित्रता को नष्ट कर रहे हैं। विधायिका को कलुषित कर रहे हैं। गंदगी फैला रहे हैं। पर तुर्रा यह कि विश्व का सबसे बड़ा जनतांत्रिक देश है भारत लावारिस कुत्ते की तरह जनता उपेक्षित हो कर मरे तो क्या राजनेताओं के भोग–विलास और आनंद में किसी तरह की कोई बाधा नहीं आनी चाहिए।

इस तरह हम कह सकते हैं कि यह कविता सर्वेश्वर की जनप्रतिबद्धता, प्रगतिशीलता, सामूहिक विकास, और जन कल्याण की कामना प्रकट करने वाली कविता है। इसमें राजनीतिक व्यवस्था के प्रति कठोर व्यंग्य है। 'हम साथ ले चलेंगे'आम जनता की पीड़ा और समस्याओं के प्रति कवि की संवेदनशीलता का भी सुंदर उदाहरण है।

**बोध प्रश्न–1**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।**

1. रघुवीर सहाय की कविताओं में निहित राजनीतिक चेतना पर प्रकाश डालिए।
2. रघुवीर सहाय की कविताओं में सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर निहित व्यंग्य स्पष्ट कीजिए।
3. रघुवीर सहाय की स्त्री– दृष्टि पर विचार कीजिए।
4. रघुवीर सहाय की कविताओं की संप्रेषणशीलता पर आलोकपात कीजिए।
5. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं की मूल संवेदना पर सोदाहरण विचार कीजिए।
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के कवि–कर्म का विवेचन कीजिए।
7. सर्वेश्वर दयाल सकेसना की कविताओं की अंतर्वस्तु पर प्रकाश डालिए।
8. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं का भाव–सौंदर्य स्पष्ट कीजिए।

……………………………………………………………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………………………………………………………

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

# इकाई 19 काव्य वाचन और विश्लेषण : केदारनाथ सिंह

इकाई की रूपरेखा


19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 केदारनाथ सिंह की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

19.2.1 केदारनाथ सिंह का कवि परिचय

19.2.2 'पानी में घिरे हुए लोग' कविता का वाचन और विश्लेषण

19.2.3 'बनारस' कविता का वाचन और विश्लेषण

19.2.4 'रचना की आधि रात' का वाचन और विश्लेषण

19.2.5 'फर्क नहीं पड़ता' का वाचन और विश्लेषण

19.3 सारांश

19.4 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर


## 19.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- केदारनाथ सिंह की प्रमुख कविताओं से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- पाठ्यक्रम में अध्ययन हेतु निर्धारित कविताओं की व्याख्या और विश्लेषण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी;
- केदारनाथ सिंह की कविता में निहित व्यापक मानवीय चेतना और जीवन मूल्यों की गहनता को उनकी कविता के विश्लेषण के माध्यम से समझ सकेंगे/सकेंगी;
- चयनित कविताओं में निहित भाषिक और काव्यगत सौन्दर्य से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी और
- यह जान सकेंगे/सकेंगी कि किसी कवि की कविता के विश्लेषण हेतु किन प्रमुख पक्षों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

## 19.1 प्रस्तावना

समकालीन कविता में केदारनाथ सिंह एक महत्वपूर्ण नाम है। अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' (1959) से लेकर 'सृष्टि पर पहरा' '2014'तक उनका व्यापक काव्य संसार फैला हुआ है। समकालीन कविता में उन्हें बहुश्रुत और बहुउद्धृत कवि के रूप में स्मरण किया जाता है। उन्होंने अपने समय की कविता के संवेदनात्मक पक्ष को सबल करने के साथ ही कविता के नये मुहावरे भी गढ़े। लोक आस्था, संवदेन और जिजीविषा को उनकी कविता में प्राणतत्व की तरह महसूस किया

जा सकता है। इकाई 12 में आप उनकी कविता के विषय में विस्तार से पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप उनकी चयनित कविताओं के वाचन और विश्लेषण का परिचय प्राप्त करेंगी/करेंगे।

## 19.2 केदारनाथ सिंह की चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

अब हम केदारनाथ सिंह की चयनित कविताओं का अध्ययन करेंगे।

### 19.2.1 केदारनाथ सिंह का कवि परिचय

केदारनाथ सिंह (1934–2018) : समकालीन कविता के बहुप्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह की प्रारंभिक कविताएँ अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक'(1959) प्रकाशित हुई थीं। कविता, आलोचना और संपादन के क्षेत्र में उनकी सृजनशीलता अत्यधिक प्रशंसित रही है। लेकिन, केदारनाथ सिंह मूलतः और अंततः कवि हैं। 'अभी बिल्कुल अभी' (1960), 'जमीन पक रही है' (1980), 'यहाँ से देखो' (1983),'बाघ' (1986),'अकाल में सारस (1988), 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' (1995), तालस्ताय और साइकिल (2005), 'सृष्टि पर पहरा' (2014) आदि कविता संग्रहों से केदार जी की लगभग साठ वर्षों की काव्य यात्रा को देखा जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि आज का कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं से लगातार शिक्षा पाता आ रहा है। उनकी कविताओं का फलक गाँव से लेकर महानगर तक व्याप्त है। लोक, आस्था और विश्वास के साथ–साथ समय और समाज की अनुगूँजें इन कविताओं में सुनी जा सकती हैं। यहाँ आस्था से आशय आध्यात्मिकता नहीं है। यह आस्था जीवन के प्रति है। सहज और सामान्य प्रतीत होने वाली इनकी काव्य–पंक्तियों में गहरा अर्थबोध छिपा रहता है। यह कवि की शक्ति और सामर्थ्य का परिचायक है। इसकी कविताओं में विलक्षण संवेदनशीलता विद्यमान है। कवि ने साधारण मनुष्य को कविता के केंद्र में प्रतिष्ठित किया है। इस अर्थ में केदार जी साधारण मनुष्य के कवि कहे जा सकते हैं। इस दौर के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवियों में केदारनाथ सिंह का नाम अग्रगण्य है। सन1989 में साहित्य अकादेमी ने 'अकाल में सारस' हेतु साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया। व्यास सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, उत्तर प्रदेश का भारत–भारती सम्मान, आदि के अलावा वर्ष 2013 में उन्हें प्रसिद्ध ज्ञानपीठ पुरस्कार से अलंकृत किया गया है।

### 19.2.2 'पानी में घिरे हुए लोग' कविता का वाचन और विश्लेषण

पानी में घिरे हुए लोग

प्रार्थना नहीं करते

वे पूरे विश्वास से देखते हैं पानी को

और एक दिन

बिना किसी सूचना के

खच्चर बैल या भैंस की पीठ पर

घर–असबाब लादकर

चल देते हैं कहीं और

यह कितना अद्‌भुत है

कि बाढ़ चाहे जितनी भयानक हो

उन्हें पानी में थोड़ी–सी जगह जरूर मिल जाती है
थोड़ी–सी धूप
थोड़ा–सा आसमान
फिर वे गाड़ देते हैं खम्भे
तान देते हैं बोरे
उलझा देते हैं मूंज की रस्सियां और टाट
पानी में घिरे हुए लोग
अपने साथ ले आते हैं पुआल की गंध
वे ले आते हैं आम की गुठलियां
खाली टिन
भुने हुए चने
वे ले आते हैं चिलम और आग

फिर बह जाते हैं उनके मवेशी
उनकी पूजा की घंटी बह जाती है
बह जाती है महावीर जी की आदमकद मूर्ति
घरों की कच्ची दीवारें
दीवारों पर बने हुए हाथी–घोड़े
फूल–पत्ते
पाट–पटोरे
सब बह जाते हैं
मगर पानी में घिरे हुए लोग
शिकायत नहीं करते
वे हर कीमत पर अपनी चिलम के छेद में
कहीं न कहीं बचा रखते हैं
थोड़ी–सी आग

फिर डूब जाता है सूरज
कहीं से आती हैं

पानी पर तैरती हुई
लोगों के बोलने की तेज आवाजें
कहीं से उठता है धुआं
पेड़ों पर मंडराता हुआ
और पानी में घिरे हुए लोग
हो जाते हैं बेचैन

वे जला देते हैं
एक टुटही लालटेन
टांग देते हैं किसी ऊंचे बांस पर
ताकि उनके होने की खबर
पानी के पार तक पहुंचती रहे

फिर उस मद्धिम रोशनी में
पानी की आंखों में
आंखें डाले हुए
वे रात–भर खड़े रहते हैं
पानी के सामने
पानी की तरफ
पानी के खिलाफ

सिर्फ उनके अंदर
अरार की तरह
हर बार कुछ टूटता है
हर बार पानी में कुछ गिरता है
छपाक........छपाक.......

'पानी में घिरे हुए लोग' केदारनाथ सिंह की एक प्रतिनिधि कविता है। इस कविता में बाढ़–पीड़ितों के यथार्थ चित्र अंकित किए गए हैं। प्राकृतिक आपदा से जूझते जनजीवन का यथार्थ बिंब कवि की लेखनी से मूर्त हो उठा है। जीवन और मृत्यु से संघर्ष करते बाढ़–पीड़ितों की जिजीविषा भी व्यक्त हुई है। बार–बार टूटने और बह जाने के बावजूद उनमें पुनः पुनः सृजन की अद्भुत क्षमता होती

है। हमारी सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था मानो उनकी भावनाओं के साथ सदा से आँख मिचौली खेलती आ रही है। विडंबना यह है कि पीड़ित जनसमुदाय एक मूक दृष्टा की भाँति सूनी निगाहों से सबकुछ देखने के लिए विवश हो रहा है। इस जनसमुदाय की अनुभूतियों, अंतःव्यथाओं व संघर्षों से केदारनाथ सिंह हमें परिचित कराना चाहते हैं। यह कविता मानवीय संवेदना से ओतप्रोत है। कविता का बिंब–विधान उसका मूल वैशिष्ट्य है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में लोक परंपरा का सुंदर निर्वाह हुआ है। लोक प्रचलित शब्दावली एवं ठेठ ग्रामीण शब्दों को भी कवि ने बड़ी खूबसूरती से कविता में समाहित किया है।

**व्याख्या :**

**पानी में घिरे हुए लोग —————— चल देते हैं कहीं और।**

केदारनाथ सिंह ने यहाँ बाढ़ के पानी से घिरे जनजीवन की त्रासदी का चित्रण किया है। जीवन और मृत्यु से जूझते लोगों की जिजीविषा भी अभिव्यंजित हुई है।

आम आदमी प्राकृतिक आपदाओं से सदा ही सर्वाधिक पीड़ित रहा है। बाढ़ के पानी से घिरे हुए लोग उससे जूझते हुए भी अपने जीवन–सूत्रों की तलाश कर रहे होते हैं। कवि का कहना है कि जलमग्न की अवस्था में ये लोग किसी उम्मीद में किसी से प्रार्थना करते हुए अपने हाथ कभी ऊपर नहीं उठाते। वे सहायता अथवा उद्धार के लिए न तो किसी देवता का आह्वान करते हैं और न ही समाज के किसी प्रशासनिक ठेकेदार की गुहार करते हैं।उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास है कि वे इस आपदा के प्रकोप से भी जीवन रक्षा का मार्ग अवश्य ढूँढने में सफल होंगे। अतः वे पूरे विश्वास के साथ पानी को देखते हैं। उसकी गहराई को नाप लेते हैं तथा एक दिन बिना किसी सूचना के अपने मवेशियों, खच्चर, बैल, भैंस आदि की पीठ पर तथाकथित अपना पूरा घर लादे किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाते हैं।

**यह कितना अद्‌भुत है —————— चिलम और आग।**

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि द्वारा बाढ़–पीड़ित जनसामान्य के जीवन संघर्ष और उनके प्रयास को उजागर किया गया है। बाढ़–पीड़ित लोगों की जीवनी शक्ति से उत्पन्न स्थितियों का अंकन किया गया है। कवि उनकी जीवनी शक्ति से चकित और चमत्कृत है। बाढ़ की भयंकरता में डूबने–उतरने के बावजूद वे इन्हीं स्थितियों में पैर जमाए रखने की थोड़ी–सी जगह ढूँढ भी लेते हैं। उनकी जरूरतें बहुत बड़ी नहीं होती हैं। कम–से–कम सुविधाओं व साधनों के साथ भी वे बेहद खुशनुमा जीवन जी लेते हैं। उन्हें जीवन यापन के लिए भौतिक संसाधनों की आवश्यकता बहुत कम होती है। प्रकृति की खुली गोद में ही उन्हें अधिक सुकून मिलता है। थोड़ी–सी जमीन, थोड़ा आसमान, थोड़ी–सी धूप और थोड़ा–सा पानी के संसार में वे अपने बसेरे का खंभा गाड़ देते हैं। मूँज की रस्सियाँ उलझाकर वे टाट की दीवारें खड़ी कर देते हैं और तने हुए बोरे के दरवाजों में पुनः उनकी जिंदगी सुरक्षित होने लगती है। पुआल के बिस्तर पर आम की गुठलियाँ चूसते हुए वे जीवन रस का आनंद उठाते हैं। भुने हुए चने से ख़ाली दिन को भरते हैं तथा चिलम की आग में भविष्य को बुनने लगते हैं।

कहना न होगा कि यहाँ झुग्गी–झोपड़ियों में साँस लेने वाली जिंदगी की यथार्थ छवि प्रस्तुत हुई है। सबसे भयानक और कठिन स्थितियों पर अपनी संघर्षशीलता के कारण विजय पाने के बाद जीवन के मूलमंत्र को समझना और जीवन रस का आनंद उठाना कविता का सबसे सुंदर पक्ष है।

**फिर बह जाते हैं ————— थोड़ी–सी आग।**

कवि बाढ़–पीड़ितों की आस्थावादी दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए कहना चाहता है कि आपदाओं से जूझते लोग जितनी बार जीवन रचते हैं बाढ़ का प्रकोप उनकी सारी कोशिशों को बहा ले जाता। वह उनकी झोपड़ियों की कच्ची दीवारों के साथ उनसे जुड़े सारे सपने, तमाम उम्मीदें, कल्पनाएँ, जैविक संसाधन की वस्तुएँ आदि भी ढहा देने का प्रयास करता है। इन लोगों की आस्था भी पूजा की घंटी के बह जाने साथ बहा दी जाती है। साथ ही बह जाता है महावीर की आदमकद मूर्ति में निहित लोगों का विश्वास। दुर्दिन में तारणहार के प्रकट होने का विश्वास भी उनका बचा नहीं रहा। बाढ़ की संहारकारी शक्ति ने उनके घर, माल–सामान, मवेशी, असबाब आदि के साथ–साथ समस्त आस्था, विश्वास, उम्मीदें, सपने आदि का भी सर्वनाश करदिया। बावजूद इसके पानी में घिरे हुए लोग कभी किसी से कोई शिकायत नहीं करते, उलाहना नहीं देते न तो प्रकृति से और न ही सामाजिक–राजनीतिक ठेकेदारों से उनका कोई ओरहन है। उन्हें अपनी क्षमता, सामर्थ्य पर पूरा विश्वास रहता है कि हर हालात में, प्रतिकूल परिस्थितियों में, विवश और लाचार स्थितियों में भी अपने हृदय के किसी कोने में थोड़ी सी आग के रूप में थोड़ी सी उम्मीद बचाए रखते हैं। यह उम्मीद की भावना उनकी जिजीविषा को उद्दीप्त करती है। यह कविता का वैशिष्ट्य है और सौंदर्य भी ।

**फिर डूब जाता है ————— पहुँचती रहे।**

बाढ़–पीड़ित अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए तमाम प्रयासों के पश्चात दिन ढलते प्रशासनिक तौर पर राहत कार्य अभियान चलाए जाते हैं। आकाश में हेलिकॉप्टरों के चक्कर लगाते रहते हैं। पीड़ितों के लिए खाद्य सामग्री, जरूरत के सामान आकाश मार्ग से गिराने का कार्यक्रम निश्चित किया जाता है। यह काम पूरा करने वालों के आगमन की सूचना हवा और पानी के साथ पीड़ितों तक मिल जाती है। आकाश में हेलिकॉप्टर का धुआँ पेड़ों पर मंडराते हुए देखकर लोगों में उत्सुकताभरी हलचल होने लगती है। उनकी भूखी निगाहें राहत सामग्री पाने के लिए बेचैन हो उठती है। वे अपनी जरूरतों को उन तक पहुँचाने के लिए किसी टूटी–फूटी लालटेन को जलाकर किसी बांस की ऊँचाई पर टांग देते हैं जिससे वहाँ उनके होने की खबर राहत पहुँचाने वालों तक प्रेषित हो जाए।

**फिर उस मद्धिम रोशनी में ————— छपाक..........छपाक.............**

कविता के इस अंतिम अंश में केदारनाथ सिंह बाढ़–पीड़ितों की मनोदशा से परिचित कराते हैं। वे कहते हैं कि उनकी आँखों, मस्तिष्क और हृदय में परस्पर विरोधी विचार उमड़–घुमड़ रहे हैं। लेकिन प्रत्यक्षतः वे टूटी लालटेन की मद्धिम रोशनी में जमे हुए पानी की निस्तब्ध आँखों में आँखें डालकर पूरी रात खड़े इंतजार कर रहे होते हैं। उनकी आँखों में प्रतीक्षा है कि कब ऊपर से कुछ खाद्य सामग्री गिरे और उनके लपकते हाथ उन्हें थाम लें। इसी प्रतीक्षा में उनकी एकटक निगाहें पानी को विविध कोणों से देखती हुई निरीक्षण करती हैं। अपने हालातों के कारणों का विश्लेषण करते हुए कभी–कभी उनके हृदय में पानी के ख़िलाफ विद्रोह सुलगने लगता है। परंतु उनकी विवशता उसे भीतर–भीतर मथती रहती है और हर बार की तरह उनके भीतर के विद्रोही भाव का तीर टूटकर बिखर जाता है। इसी के साथ उनकी उत्सुकता, उम्मीदें, बेचैनी, प्रतीक्षा सबकुछ पुनः टूटने की कगार पर आ जाते हैं। ऐसी हालत में राहत कर्मियों के द्वारा पानी में कुछ गिराया जाता है छपाक छपाक। इस ध्वनि के साथ पीड़ित जन समुदाय की अंतर्व्यथा और भी घनी हो जाती है। तात्पर्य यह है कि जिन राहत सामग्री की उम्मीद में रात भर पानी में खड़े रहे, इंतजार करते रहे अंततः बाढ़ का पानी उसे भी अपने साथ बहाकर ले जाता है। बस बच जाता है तो केवल एक ध्वनि छपाक.............. छपाक की।

केदार जी के जन साधारण के प्रति प्रतिबद्धता के संबंध में नन्दकिशोर नवल लिखते हैं – ''निस्संदिग्ध है कि 'यहाँ से देखो' की कविताओं के केन्द्र में साधारण मनुष्य है। केदार जी साधारण तल पर रहने वाले इसी साधारण मनुष्य के कवि हैं, अज्ञेय की तरह उस ऊँचाई के नहीं जहाँ कोई रहता नहीं है। यह ऊँचाई तो अपनी निर्जनता से उन्हें दहला देती है : मेरे शहर के लोगो/यह कितना भयानक है/ कि शहर की सारी सीढ़िया मिलकर/जिस महान ऊँचाई तक जाती हैं/वहाँ कोई नहीं रहता!'' (समकालीन काव्य यात्रा, पृ.151)

### 19.2.3 'बनारस' कविता का वाचन और विश्लेषण

इस शहर में वसंत
अचानक आता है
और जब आता है तो मैंने देखा है
लहरतारा या मडुवाडीह की तरफ़ से
उठता है धूल का एक बवंडर
और इस महान पुराने शहर की जीभ
किरकिराने लगती है

जो है वह सुगबुगाता है
जो नहीं है वह फेंकने लगता है पचखियाँ
आदमी दशाश्वगमेध पर जाता है
और पाता है घाट का आखिरी पत्थर
कुछ और मुलायम हो गया है
सीढ़ियों पर बैठे बंदरों की आँखों में
एक अजीब सी नमी है
और एक अजीब सी चमक से भर उठा है
भिखारियों के कटरों का निचाट खालीपन

तुमने कभी देखा है
खाली कटोरों में वसंत का उतरना!
यह शहर इसी तरह खुलता है
इसी तरह भरता

और खाली होता है यह शहर
इसी तरह रोज़ रोज़ एक अनंत शव
ले जाते हैं कंधे
अँधेरी गली से
चमकती हुई गंगा की तरफ़

इस शहर में धूल
धीरे–धीरे उड़ती है
धीरे–धीरे चलते हैं लोग
धीरे–धीरे बजते हैं घंटे
शाम धीरे–धीरे होती है

यह धीरे–धीरे होना
धीरे–धीरे होने की सामूहिक लय
दृढ़ता से बाँधे है समूचे शहर को
इस तरह कि कुछ भी गिरता नहीं है
कि हिलता नहीं है कुछ भी
कि जो चीज जहाँ थी
वहीं पर रखी है
कि गंगा वहीं है
कि वहीं पर बँधी है नाँव
कि वहीं पर रखी है तुलसीदास की खड़ाऊँ
सैकड़ों बरस से
कभी सई–साँझ
बिना किसी सूचना के
घुस जाओ इस शहर में
कभी आरती के आलोक में
इसे अचानक देखो
अद्भुत है इसकी बनावट

यह आधा जल में है
आधा मंत्र में
आधा फूल में है

आधा शव में
आधा नींद में है
आधा शंख में
अगर ध्यान से देखो
तो यह आधा है
और आधा नहीं भी है

जो है वह खड़ा है
बिना किसी स्थंभ के
जो नहीं है उसे थामें है
राख और रोशनी के ऊँचे ऊँचे स्थंभ
आग के स्थंभ
और पानी के स्थंभ
धुएँ के
खुशबू के
आदमी के उठे हुए हाथों के स्थंभ

किसी अलक्षित सूर्य को
देता हुआ अर्घ्य
शताब्दियों से इसी तरह
गंगा के जल में
अपनी एक टाँग पर खड़ा है यह शहर
अपनी दूसरी टाँग से
बिलकुल बेखबर!

**व्याख्या**

**इस शहर में बसंत ———————— कटोरों का निचाट ख़ालीपन।**

'बनारस' कविता केदारनाथ सिंह के काव्यसंग्रह 'यहाँ से देखो' में संकलित है। इस कविता में प्राचीनतम शहर बनारस के सांस्कृतिक वैभव के साथ ठेठ बनारसीपन को भी आलोकित किया गया है। बनारस पर महाकवि तुलसीदास ने भी लिखा है, मिर्जा गालिब ने भी, भारतेंदु, प्रेमचंद आदि ने भी, लेकिन केदारनाथ सिंह का बनारस अपने आप में भिन्न है। इस कविता में बनारस जीवंत हुआ है अपने सामर्थ्य और सीमा के साथ बनारस के वैभव और सम्मोहन को भी इस कविता में अंकित किया गया है। इस कविता में पाठक मिथकीय परंपरा से जुड़े बनारस और यथार्थ के धरातल पर खड़े बनारस का साक्षात्कार कर सकते हैं। बनारस के सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को भी कविता में रूपायित किया गया है।

आस्था, विश्वास, भक्ति और आश्चर्य का समन्वित रूप है केदारनाथ सिंह की 'बनारस'। इस शहर में बसंत अचानक आता है जब बड़ी तादाद में श्रद्धालु अपने श्रद्धार्घ्य अर्पित करने आ जाते हैं। उनके पदचाप से उड़ने वाली धूल से बवंडर सा उठता है और महान पुराने शहर की जीभ किरकिराने लगती है। अचानक लहरतारा और मडुवाडीह गंगाघाट के किनारे स्थित मोहल्ले की ओर कवि का ध्यान केंद्रित होता है।

लहरतारा का संबंध कबीर से है और इस कविता में केदारनाथ सिंह ने कबीर की परंपरा को आधार बनाया है। लहरतारा कबीर का प्रतीक है तो कबीर क्रांतिकारी परिवर्तनशील कविताई चेतना का। बनारस शहर का बसंत यानी श्रद्धा, भक्ति, मोक्ष, आस्था और रूढ़िवादिता का संकेतक है। कबीर की चेतना ही उस रूढ़िवादिता, धर्म के अवैज्ञानिक प्रयोग रूपी जीभ की किरकिरी को समाप्त कर सकती है।

बसंत का आगमन जिस प्रकार जड़—चेतन, दृश्य—अदृश्य सभी को जीवंतता का संचार करता है, उसी प्रकार श्रद्धालुओं की भीड़ बनारस के वातावरण, मनुष्य और मानवेतर प्राणियों में नई चेतना और उल्लास का भाव संचार करती है। अर्थात् उनकी आशाएँ, उम्मीदें और आकांक्षाएँ उमड़ने लगती हैं। श्रद्धालु दशाश्वमेध घाट पहुँचते हैं तो वहाँ चहल—पहल बढ़ जाती है। उनके खाने के सामान की ओर देखते हुए बंदरों की आँखों में एक अजीब सी नमी उतर आती है। कई दिनों से नितांत ख़ाली पड़े भिखारियों के कटोरे में उल्लसित कर देनेवाली खनक सुनाई पड़ती है। कहना न होगा कि कवि की व्यापक संवेदना यहाँ मूर्त हो उठी है।

**तुमने कभी देखा है ———————— गंगा की तरफ**

बनारस कविता के माध्यम से पुरातन शहर के रहस्य भी उद्घाटित होते हैं। बनारस महज एक शहर नहीं है। यह एक मिथक है। उल्लेख किया जा चुका है कि बनारस में श्रद्धालुओं अथवा पर्यटकों की संख्या बढ़ती है तो इसका वातावरण वसंती हो जाता है। अर्थात उमंग, उल्लास और ताजगी से भर उठता है। तीर्थयात्रियों, दर्शनार्थियों और श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ती है तो शहर भरा—पूरा हो उठता है। शवों को मोक्ष प्रदान करने वाली गंगा में प्रवाहित करते ही शहर ख़ाली भी हो जाता है।

वसंत ऋतु में प्रकृति सुहानी हो उठती है। जनजीवन में उत्साह भर उठता है। कवि का आग्रह है कि 'ख़ाली कटोरों में बसंत का उतरना' में जो सौंदर्य लुक्कायित है, उसे भी महसूस किया जाए। कितना सुंदर बिंब है 'ख़ाली कटोरों में बसंत का उतरना'। जो उपेक्षित और अवहेलित भिक्षुकों के ख़ाली कटोरों में चंद चिल्लर या खाद्य के कुछ टुकड़े गिरते हैं तो कवि ने बसंत का उतरना कहा है। कटोरे के भरने और ख़ाली होने की तरह शहर भी भरता और ख़ाली होता है। धार्मिक भावनाएँ, क्रियाकलाप, विचार आदि भी आते—जाते हैं। अभावों, असुविधाओं, मुसीबतों से भारी जिंदगी को

स्पष्ट करने के उद्देश्य से कवि ने 'अंधेरी गली' का प्रतीक प्रयुक्त किया है। अंधेरी गली में रहने वाले लोग मृतप्रायः हैं। वे दुनिया को हमेशा के लिए अलविदा कहने वालों को अपने कंधे पर लादे 'चमकती हुई गंगा' की ओर ले जाते हैं। कैसी विडंबना है कि आजीवन अभाव–असुविधाओं को साथी बनाने वालों को मृत्यु होने पर गंगा घाट पर मोक्ष की अपेक्षा में शव–दाह किया जाता है।

बनारस की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह हर स्थिति में उल्लास और आनंद से भरा रहता है। उसका भरना और उसका ख़ाली होना, ख़ाली कटोरों में बसंत का आना, अंधेरी गली और चमकती हुई गंगा केवल विरोधाभासी नहीं हैं, बल्कि ये प्रयोग पाठक को उल्लसित करते हैं और उसके हृदय को गहरे रूप से द्रवित करते हैं।

**इस शहर में धूल –––––––––– सैकड़ों बरस से।**

केदारनाथ सिंह की कविता 'बनारस' में बनारस शहर को एक जीवंत पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस शहर को आप काव्य नायक भी कह सकते हैं। बनारस से कवि का दीर्घ संबंध रहा है। इसलिए कवि का जीवनानुभव इस कविता में बार–बार झांकता हुआ नजर आता है। ध्यातव्य है कि कवि ने बनारस को समग्रता और संपूर्णता के साथ अपनी कविता में उकेरा है।

इस कवितांश में 'धीरे– धीरे' शब्द–युग्म का बार–बार प्रयोग हुआ है। इससे कवि एक तरह की निरंतरता की ओर संकेत करना चाहता है। यह शब्द–युग्म बनारस शहर और उसके जनजीवन की विशेषता प्रकट करता है। लोगों का चलना, धूल का उड़ना , घंटे का बजना, शाम का आना आदि सबकुछ धीमे–धीमे होता है। प्रत्येक क्रिया में धीमापन तो है लेकिन ठहराव या स्थिरता नहीं है। इस धीमेपन में भी एक गति है, लय है और छंद भी। दुनिया बड़ी तेजी से बदल रही है लेकिन बनारस दुनिया की गति में भागने की होड़ में नहीं है। लोगों की आस्था, विश्वास, रूढ़ियाँ और मान्यताएँ भी बड़ी तेजी से नहीं बदल रहे हैं। लोग जरूर बदल रहे हैं लेकिन उसी अनुपात में बनारस नहीं। उसमें एक सामूहिक लय है। इस सामूहिक लय में पूरा शहर भौतिकता के नाम पर पूरी तरह नहीं बदल गया है। अगर बदला भी है तो धीरे–धीरे। इसकी हर चीज अपने स्थान पर इत्मिनान के साथ है। बदलाव, परिवर्तन या विप्लव के लिए इस शहर की कोई बड़ी बेचैनी नहीं दिखाई पड़ती है।गंगा नदी भी वहीं है। लोगों की आस्था और विश्वास पूर्ववत कायम हैं।गंगा के तट पर बंधी नौकाएँ भी अपनी जगह पर हैं। महाकवि तुलसीदास की खड़ाऊँ भी सैकड़ों बरस से ज्यों का त्यों रखी हुई है। नयापन के प्रति बहुत अधिक व्याकुलता बनारस की नहीं है। नयापन आ भी रहा है तो अपनी धीर–मंथर गति से ही। यह इस शहर की प्रमुख विशेषता है।

**कभी सई –साँझ बिना –––––––––– आधा नहीं भी है।**

इन पंक्तियों में कवि ने बनारस की विलक्षण विशेषताओं और अपरूप सौंदर्य का चित्रण किया है। संसार में कहीं भी किसी भी रूप में संपूर्णता की अवधारणा नहीं है। बनारस शहर को भी संपूर्णता में जान पाना बहुत आसान नहीं है। कहीं न कहीं कुछ छूट ही जाता है। यह हर जगह अपनी उपस्थिति आधे–अधूरे ही दर्ज करता है। यहाँ आस्तिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के लोग हैं। जो आस्तिक है वह केवल बौद्धिक और केवल आध्यात्मिक नहीं। इसलिए वह आधा है। यदि आप बनारस शहर को पूरी तरह जानने–समझने का उत्साह रखते हैं तो किसी दिन शाम को इसके अंदर प्रवेश कीजिए। संध्या आरती के आलोक में आप पाएँगे कि यह शहर आधा जल, आधा मंत्र में, आधा फूल में, आधा शव में, आधा नींद में और आधा शंख में है। आशय यह कि इस शहर की संपूर्णता बँटी हुई है, विभाजित है। आप पाएँगे कि कहीं शंख ध्वनि तो कहीं धार्मिक क्रिया–कलाप संपन्न हो रहे हैं। कहीं से शव–यात्राएँ निकलकर इसी घाट पर दाह संस्कार के लिए चले आ रहे हैं तो कहीं लोग सबसे बेख़बर हो आराम से सो रहे हैं। समूचा अस्तित्व कई अस्तित्वों में विभाजित हुआ है। 'आधा है और आधा नहीं भी है' को समझने के लिए आप कविता के पूर्वार्ध का संदर्भ स्मरण कीजिए जहां कवि ने कबीर की चेतना का बनारस में अभाव पाया था। परंपराओं

के प्रति श्रद्धा आधे बनारस के रूप में देखा जा सकता है तो रूढ़ियों के खंडन और अस्वीकार न होना बनारस के अधूरेपन का संकेतार्थ माना जा सकता है।

**जो है वह खड़ा है ————— बिल्कुल बेख़बर।**

उपर्युक्त पद्यांश में कवि केदारनाथ सिंह ने बनारस के प्रति लोगों की आस्था और विश्वास, आध्यात्मिकता और अलौकिकता आदि को प्रदर्शित किया है। आस्था केवल आस्था होती है। उसे किसी सहारे की जरूरत नहीं होती है। लेकिन वह अडिग होती है। लोगों के मन में बनारस के प्रति, स्वर्ग और मोक्ष के प्रति, प्रबल आस्था बनी हुई है। सदियों से अटूट विश्वास क़ायम है। बनारस के घाटों, वहाँ जलते हुए शवों से निकलती हुई अग्निशिखा, आरती के दीपों की रौशनी से प्रतिबिंबित गंगा आदि का काव्यिक चित्रण भी किया गया है। कवि ने कहा है कि जो यहाँ नहीं है उसे भी कुछ स्तंभों ने बांध रखा है। अर्थात् जो नहीं है, चिता के रूप में जल रहा है वहाँ धार्मिक क्रिया–कलाप हो रहे हैं। एक अदृश्य आस्था और विश्वास को थामे हुए हैं यहाँ के लोग आरती के धुएँ से उठने वाली ख़ुशबू में, शवों को लेकर आने वाले लोगों के ऊपर उठे हुए हाथों में अथवा रामनाम सत्य है कि जयकारों में उसे ढूँढा जा सकता है। कबीर जिस मिथ को तोड़ने के लिए काशी छोड़ मगहर चले गए थे और उन्होंने वहाँ प्राण त्यागे थे, आज काशी में दृश्यमान नहीं है। आज भी लोग अपनी वृद्धावस्था में बनारस जाकर प्राण त्यागने पर स्वर्गलाभ का विश्वास रखते हैं। उनके विश्वास में रंच मात्र का भी बदलाव नहीं आया है। इसी भाव को कवि ने काव्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लिखा है 'अलक्षित सूर्य को अर्घ्य देते हुए'। यह शहर अपने दूसरे पैर से बेख़बर होकर केवल एक पैर पर खड़ा है, उसे अपने दूसरे पैर होने का आभास तक नहीं है। यह दूसरा पैर परिवर्तनशीलता और प्रगतिशील विचार का है जिसका मार्ग कबीरदास ने ढूँढ निकाला था। उस धारा का प्रवाह पुनर्स्थापित करने का आग्रह कवि का है। कवि केदारनाथ सिंह बनारस मैं आध्यात्मिकता और प्रगतिशीलता के समन्वित रूप के दर्शन के अभिलाषी हैं।

### 19.2.4 'रचना की आधी रात' कविता का वाचन और विश्लेषण

अंधकार ! अंधकार ! अंधकार !

आती है

कानों में

फिर भी कुछ आवाजें

दूर बहुत दूर

केही

आहत सन्नाटे में

रह–रहकर

ईंटों पर

ईंटों के रखने की

फलों के पकने की

खबरों के छपने की

सोए शहतूतों पर
रेशम के कीड़ों के
जगने की
बुनने की ———

और मुझे लगता है
जुड़ा हुआ इन सारी
नींदहीन ध्वनियों  से
खोए इतिहासों के
अनगिनत ध्रुवांत  पर
मैं भी रचता रहा हूँ
झुका हुआ घंटों से
इस कोरे कागज की भट्ठी पर
लगातार
अंधकार ! अंधकार  ! अंधकार !

केदारनाथ सिंह की 'रचना की आधी रात' शीर्षक कविता 1960 में प्रकाशित हुई थी। इस कविता को समझने के लिए बीसवीं शताब्दी के छठे दशक के भारतीय संदर्भ को समझना आवश्यक है। राजनीति की दृष्टि से यह नेहरू काल था। स्वतंत्रता के पहले देखे और दिखाए गए सपनों का टूटना और मोहभंग का काल था। नेहरू नए भारत के निर्माण का स्वप्न देख रहे थे तो कुछ उनके साथ थे और कुछ असंतुष्ट भी। डॉ सदानंद साही ने 'केदारनाथ सिंह : चकिया से दिल्ली'में 'एक छोटी–सी स्मृति' शीर्षक लेख में 'रचना की आधी रात' में पुलिस विभाग के डी जी सौमित्र शंकर बनर्जी का उल्लेख किया है जिन्होंने छात्रावस्था में ही इस कविता को पढ़ा ही नहीं था बल्कि इतने वर्षों बाद भी उन्हें कविता पूरी याद थी। उन्होंने केदार जी उपस्थिति में न केवल पूरी कविता संगोष्ठी में सुनाई बल्कि अपने ढंग से उसके निहितार्थों पर भी प्रकाश डाला – 'पुलिस का काम भी रात के आहत सन्नाटे में उठने वाली आवाजों को सुनना है ——— और समाज के दुखों को दूर करना है आदि, आदि।' (पृष्ठ–38) कहने का आशय यह है कि केदारनाथ सिंह की कविताएं विभिन्न वर्गों तक व्याप्त थीं, वे केवल साहित्य के विद्यार्थी और अध्यापकों तक सीमित न थीं।

यह  कविता कवि की रचना प्रक्रिया और उसकी कवि दृष्टि को भी समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उल्लेख करना अनावश्यक है कि कवि की अनेक कविताओं में बहुआयामिता है। 'रचना की आधी रात' भी एक ऐसी बहु आयामी कविता है।

**व्याख्या :**

**अंधकार ! अंधकार ! —————— बुनने की ——**

उपर्युक्त पंक्तियाँ ज्ञानपीठ पुरस्कृत कवि केदारनाथ सिंह की 'रचना की आधी रात' कविता से अवतरित हैं। यहाँ कवि ने अपनी रचना प्रक्रिया को स्पष्ट किया है तथा यह बताया है कि उनकी कविता बाहर आती कैसे है।

रचना एक प्रकार से जीवन है। अंधेरे से उजाले की ओर जीवन की यात्रा होती है। पुनः जिस प्रकार माँ के गर्भ से शिशु का जन्म होता है उसी प्रकार रचना कवि के गहरे अंतस्तल में भावों का आंदोलन और उद्वेलन होने के पश्चात ही मूर्त रूप धारण करती है। महत्वपूर्ण और महान अथवा कालजयी रचनाएँ इस ढंग से संसार के समक्ष प्रस्तुत होती हैं। वे अपने समय के गहन अंधकार से ही जन्म लेती हैं। 'अंधकार' की तीन बार आवृत्ति उसकी सघनता का सूचक है जिसमें कुछ देखने, समझने और परखने के लिए कोई अवसर नहीं मिलता है। कविता आगे बढ़ती है तो कवि कहता है कि बावजूद उस सघन अंधेरे के बीच में से कुछ आवाजें आती हैं। दूर कहीं बहुत दूर किसी 'आहत सन्नाटे' से आनेवाली आवाजों को कवि सुन पा रहा है। सन्नाटा के लिए आहत विशेषण इसलिए है कि ध्वनियाँ उस सन्नाटे को बाधित कर रही हैं। सन्नाटे को चीरते हुए बहुत दूर से कहीं ईंटों पर ईंटों के रखने की, फलों के पकने की, खबरों के छपने की, सोए हुए शहतूतों पर कीड़ों के जगने और रेशम बुनने की आवाज भी सुनाई पड़ रही है। ध्यान दीजिए कि किसी दूरी से भट्ठे में ईंटों पर ईंटें रखी जाने की आवाज तो सुनाई पड़ सकती है, लेकिन फलों के पकने और रेशम बुनने की आवाज सामान्यतः कानों में सुनाई नहीं पड़ती है। फल का पकना और रेशम बुनना देखा जाता है, सुना नहीं जाता, लेकिन कवि को ये आवाजें भी सुनाई पड़ रही हैं। दरअसल कवि ने यहाँ बिंबों के माध्यम से कुछ दृश्य उपस्थित किया है। ये दृश्य बिंब कवि के सृजन कर्म का प्राणतत्व है। पुनः इन आवाजों में निर्माण है। जीवन की अर्थवत्ता है और उसकी पृष्ठभूमि अंधकार ही नहीं सघन अंधकार है। आपने सुना भी होगा कि दुःख के चरम क्षण में सुख की रौशनी दिखाई पड़ती है। घोर विषाद में आनंद के भाव छिपे रहते हैं। घने अंधकार में भी सृजन की प्रक्रिया जारी रहती है।

**और मुझे लगता है ——————— अंधकार! अंधकार ! अंधकार !**

इन पंक्तियों में कवि कहता है कि नींदहीन ध्वनियों में अर्थात् अनवरत चलने वाली क्रियाओं –ईंटों पर ईंटें रखना, फलों का पकना, खबरों का छापना और रेशम बुनना –– में सृजनात्मकता अथवा निर्माण की प्रक्रिया जारी है। ये सारी चीजें घने अंधेरे के बीच ही घटित हो रही हैं। कवि इन्हें सुन रहा है। महज चुप्पी लगाए बैठा हुआ नहीं है। फलों का पकना रचनात्मक फल का भी पकना है। स्मरण करें सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की पंक्ति "दिए हैं जगत को मैंने फूल–फल /किए हैं अपनी प्रभा से" अर्थात् कवि ने अपनी रचनात्मकता और सृजनात्मकता को जगत को समर्पित किया है। पकना यानी भावों का परिपक्व होना भी है। नींद में व्यक्ति अकर्मण्य सा होता है। कोई क्रिया नहीं होती है। यहाँ तो नींदहीन क्रिया है। सतत गतिशील क्रिया है जिसके लिए कवि ने अति सुंदर ढंग से कहा है 'नींदहीन ध्वनियाँ'। कवि को लगता है कि इन नींदहीन ध्वनियों के लुप्त इतिहास के अनगिनत /ध्रुवांतों पर कवि पहुँच जाता है। अर्थात् अंधेरे समय में खोए हुए इतिहास के असंख्य /ध्रुवांत पर पहुँचना और मानव जीवन के लिए उपयोगी तत्वों का संधान करते हुए कवि सतत रचनारत है। कोरे कागज की भट्ठी पर लगातार मैं संघर्षरत हूँ। 'भट्ठी' में तपने और गलने के भाव को याद करें। बिना तपे और गले नयी वस्तु को आकार नहीं मिलता है। ठीक उसी प्रकार हृदय के निरभ्र कोने में भावों का आंदोलन, उद्वेलन और उच्छ्लन से ही कविता का जन्म संभव होता है। कवि ने जीवन और संघर्ष से अपने बिंबों को अंकित किया है। श्रम, प्रकृति, जीवन को महत्व दिया है। अतः यहाँ उसकी जीवन दृष्टि को भी भली–भाँति समझा जा सकता है।

कविता का कद या उसका उजाला हमेशा कवि से भी बड़ा हो तो वह कालजयी बनती है। कवि तो रचना प्रस्तुत करके रेशम के कीड़े की तरह शहतूत में अपने को समर्पित कर देता है। जब कभी भी कोई कवि आत्ममुग्धता में जीने लगता है और अपने को महान मान बैठता है तो उसकी रचना न महत्वपूर्ण बन पाती है और न ही कालातीत हो पाती है। उन्नीस सौ साठ में रची गयी इस कविता में हम केदार जी की काव्ययात्रा के अगले चरण के संकेत पाते हैं। जैसे, पहला संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' के बाद 'जमीन पक रही है' और उसके बाद कवि का 'यहाँ से देखो'। काव्य भूमि का पकना और उस भूमि पर फलीभूत को दिखाना बहुत कुछ संकेत करता है। इस विषय पर आप स्वयं विचार कर सकते हैं।

### 19.2.5 'कुछ फर्क़ नहीं पड़ता' कविता का वाचन और विश्लेषण

हर बार लौटकर

जब अंदर प्रवेश करता हूँ

मेरा घर चौंक्कर कहता है 'बधाई'

ईश्वर

यह कैसा चमत्कार है

मैं कहीं भी जाऊँ

फिर लौट आता हूँ

सड़कों पर परिचय–पात्र माँगा नहीं जाता

न शीशे में सबूत की जरूरत होती है

और कितनी सुविधा है कि हम घर में हों

या ट्रेन में

हर जिज्ञासा एक रेलवे टाइमटेबुल से

शांत हो जाती है

आसपास मुझे हर मोड़ पर

थोड़ा सा लपेटकर बाक़ी छोड़ देता है

अगला कदम उठाने

या बैठ जाने के लिए

और यही जगह है, जहां पहुँचकर

पत्थरों की चीख साफ  सुनी जा सकती है।
पर सच तो यह है कि यहाँ
या कहीं भी फर्क़ नहीं पड़ता

तुमने जहां लिखा है 'प्यार'
वहीं लिख दो 'सड़क'
फर्क़ नहीं पड़ता

मेरे युग का महाविरा है
फर्क़ नहीं पड़ता

अक्सर महसूस होता है
कि बगल में बैठे हुए दोस्तों के चेहरे
और अफरीका की धुंधली नदियों के छारे
एक हो गए हैं

और भाषा जो बोलना चाहता हूँ
मेरी जिह्वा पर नहीं
बल्कि दांतों के बीच की जगहों में
सटी  हुई है

मैं बहस शुरू तो करूँ
पर चीजें एक ऐसे दौर से गुजर रही हैं
कि सामने की मेज को
सीधे मेज कहना
उसे वहाँ से उठाकर
अज्ञात अपराधियों के बीच में रख देना है

और यह समय है

जब रक्त की शिराएँ शरीर से कटकर

अलग हो जाती हैं

और यह समय है

जब मेरे जूते के अंदर की एक नन्ही सी कील

तारों को गड़ने लगती है।

**व्याख्या :**

**हर बार लौटकर ———————   या बैठ जाने के लिए।**

केदारनाथ सिंह की  कविता 'कुछ फर्क नहीं पड़ता' वास्तव में जीवन की कटु वास्तविकताओं का चित्रण करती है। 'फर्क नहीं पड़ता' कवि के अनुसार वर्तमान युग का मुहावरा ही बन गया है। यह कविता आधुनिक कहलाए जाने वाले मनुष्य के भावहीन, संवेदनविहीन होने की पीड़ा, व्यथा और बेचौनी  को अंकित करती है। आज का मनुष्य अपने घर में, अपनों के बीच भी एक अजीब क़िस्म की अजनबीयत की भावना का शिकार होता जा रहा है। इस स्थिति से वह निरंतर जूझता दिखाई पड़  रहा है।

आज हमारे आत्मीय संबंध बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। संबंधों की ऊष्मा घटती जा रही है। हमारी रागात्मकता निरंतर छीजने लगी है। घर, जो कभी स्नेह, प्रेम, अपनापा आदि का प्रतीक था तथा सुरक्षा के अहसास की शरण स्थली के रूप में समझा जाता था आज वहाँ लौटकर भी किसी तरह आत्मीयता और शांति नहीं मिल पाती है। कहने को घर में एकाधिक सदस्य होते हैं लेकिन सभी उपभोक्तावादी सभ्यता की चपेट में आकर यंत्रवत जीवनयापन करने के लिए अभिशप्त हैं। कवि ने इस भाव को स्पष्ट करने के लिए कहा है कि आज अपना घर उसे किसी अपरिचित आगंतुक की तरह बधाई देता है। भूमंडलीकरण के दौर की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि मनुष्य व्यक्ति में तब्दील हो गया है। वह अपनी प्रकृति और संस्कृति से ही दूरी बना ली है। वह न केवल अपनों से बल्कि स्वयं से कटता जा रहा है। यह स्थिति किसी भी संवेदनशील मनुष्य के लिए अत्यंत कष्टप्रद है। चाहे वह घर हो या ट्रेन में, अपने जीवन को एक निश्चित ढर्रे में ही सिमट कर रख दिया है। एक मशीन की भाँति उसने अपनी जीवन शैली बना ली है। इस युग में भावना कमजोरी का लक्षण माना जा रहा है। व्यावहारिक ज्ञान से रहित समझा जा रहा है। व्यक्ति भावशून्य और यंत्र सदृश बनता जा रहा है। समाज के साथ उसके दिनोदिन टूटते रिश्ते के परिणाम स्वरूप चाहे वह सड़कों पर हो या महफिलों में बस अकेला पड़ गया है। राह चलते हर व्यक्ति  के लिए एक–दूसरे का चेहरा अनजाना और बेपहचाना प्रतीत होता है। व्यक्ति इस कदर ग्लोबल हो गया है कि व्यापक सरोकार और चिंताओं के लिए उसके पास कोई स्पेस तक नहीं बचा है।

**और यही जगह है   ——————— तारों को गाड़ने लगती है।**

कवि का आग्रह है कि जहां तक संभव हो मनुष्य को यथार्थ से मुँह  मोड़ना नहीं है बल्कि उससे जुड़ना चाहिए। यथार्थबोध से जुड़ना तथा इससे संबधित परिस्थितियों को मन से अपनाना अच्छी काव्य रचना के लिए आवश्यक मानते हैं। 'कुछ फर्क नहीं पड़ता' कविता आधुनिक मानव के इसी यथार्थ को प्रस्तुत करती है। कवि को यह लगता है कि वह ऐसी जगह पहुँच गया है जहाँ कोई अपना नहीं है। उसे ऐसा अहसास होता है कि आज का मनुष्य पाषाण से भी अधिक क्रूर, कठोर और निर्दय हो गया है।

कवि ने इस कविता के माध्यम से आज के निर्मम जीवन पर व्यंग्य किया है। उसने कहा है  कि आज का मनुष्य सभी तरह के जीवन मूल्यों के प्रति उदासीन है। आज 'सड़क' और 'प्यार' दोनों

एक से हैं अर्थात 'प्यार' भी सड़क की तरह सपाट और भावशून्य हो चुके हैं। भावावेग का कोई स्थान नहीं रह गया है। जिस दौर में इंसान और इंसानी रिश्ते प्रोडक्ट में तब्दील हो जाएँ वहाँ स्वाभाविक है कि मानवीय नाते–रिश्तों का बिखरना, टूटना स्वाभाविक है। संवेदनशील जीवन, भाव रहित भाषा और व्यवहार आज के दौर की पहचान के रूप में स्वीकार कर लिए गए हैं। 'फर्क़ नहीं पड़ता' हमारे युग का नारा बन चुका है। यह सर्वाधिक चिंता का विषय है।

केदारनाथ सिंह ने हमारे समकाल में प्रसरित अजनबीपन का मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा है कि जिन्हें हम नहीं जानते या पहचानते हैं उनके प्रति हमारा जैसा भाव रहता है ठीक वही भाव पास बैठे मित्र के प्रति भी प्रकट हो रहा है। एक अजनबीपन की स्थिति बनी हुई है। यह अपने समय की सबसे बड़ी विडंबना है। अपनी बोली–बानी में हम अपने को अभिव्यक्त करने में लज्जित महसूस कर रहे हैं। कवि कहता है कि वर्तमान समय में मनुष्य की जीवन शैली बनावटी और दिखावटी हो गई है। व्यक्ति के मन के भीतर जो बात होती है वह उसे व्यक्त नहीं करता। मुंह से बाहर जो बात निकलती है वह बनावटी और झूठी होती है। अपनत्व खो गया है। एक भयानक दौर से गुजर रहे हैं हम। तमाम विसंगतियों और विडंबनाओं के बीच मनुष्य घुटता–पीसता, कराहता हुआ जीवन निर्वाह कर रहा है। कवि ने इस विकट समय की विकरालता को स्पष्ट करते हुए जो बिंब योजना प्रस्तुत की है वह निश्चित तौर पर अभिनव है – 'जब रक्त की शिराएँ शरीर से कटकर/ अलग हो जाती हैं।' रक्त विहीन शरीर का कोई महत्व नहीं होता है। संवेदनहीन जीवन की कोई अहमियत नहीं रह जाती। अपनी जड़ से जुड़कर ही मनुष्य अपने आपको बचाए रख सकता है। मौजूदा स्थिति 'जूते के अंदर की एक नन्ही–सी कील' के समान गड़ने लगती है। उम्मीद करनी चाहिए कि मनुष्य उस नन्ही सी कील को निकाल कर फेंक देगा। इससे मनुष्य और मनुष्यता की विजय होगी।

**बोध प्रश्न–1**

**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।**

1. केदारनाथ सिंह की कविताओं में बिंब योजना को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

   ......................................................................................................................................
   ......................................................................................................................................
   ......................................................................................................................................

2. केदारनाथ सिंह के रचना संसार में अभिव्यक्त बदलते समय पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

   ......................................................................................................................................
   ......................................................................................................................................
   ......................................................................................................................................

3. पठित कविताओं के आधार पर केदारनाथ सिंह के काव्य सौंदर्य का उद्घाटन कीजिए।

   ......................................................................................................................................
   ......................................................................................................................................
   ......................................................................................................................................

4. समकालीन कविता के विकास में केदारनाथ सिंह के योगदान पर विचार कीजिए।

   ......................................................................................................................................
   ......................................................................................................................................
   ......................................................................................................................................

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY